"हिन्दी साहित्य सम्मेलन" की रत्न परीक्षा में स्वीकृत

आश्चर्य-वृत्तान्त

ले
ख
क

अम्बिकादत्त-व्यास

प्रकाशक—
श्री कृष्णकुमार व्यास
व्यास पुस्तकालय,
मानमन्दिर, काशी ।

चतुर्थ संस्करण
१६४६
एक रुपया

मुद्रक—
कृष्णगोपाल केडिया
वणिक प्रेस
साक्षीविनायक, काशी ।

"हिन्दी साहित्य सम्मेलन" की रत्न परीक्षा में स्वीकृत

आश्चर्य-वृत्तान्त

ले
ख
क

अम्बिकादत्त-व्यास

प्रकाशक—
श्री कृष्णकुमार व्यास
व्यास पुस्तकालय,
मानमन्दिर, काशी ।

चतुर्थ संस्करण
१९४९
एक रुपया

मुद्रक—
कृष्णगोपाल केडिया
वणिक प्रेस
साक्षीविनायक, काशी ।

दो शब्द

आश्चर्य—वृत्तान्त के रचयिता पं० अंबिकादत्त व्यासजी के पूर्वज जयपुर के 'धूला' नामक ग्राम के थे। इनके पिता श्री० पं० दुर्गादत्त जी संवत् १९१६ में काशी चले आये। तब से इनका यहाँ स्थायी रूप से निवास हो गया।

ये इतनी कम अवस्था में कविता बनाने लग गये थे, और ऐसी अच्छी भी, कि श्रोता उन्हें इनके द्वारा निर्मित मानने में संदेह करते थे। परंतु कुछ दिनों बाद, संवत् १९२६ में जब ग्वाल कवि के शिष्य खंग कवि काशी पधारे और भारतेंदु हरिश्चंद्र के दरबार में 'सूरज देखि सकै नहिं घुग्घू', यह समस्या पूर्त्ति के लिए पेश की तब स्वयं भारतेंदु के इस समस्या पर कोई उत्तम कविता न बन सकने की बात कही जाने पर; अपने पिताजी के साथ वहीं उपस्थित बालक अंबिकादत्त ने तत्क्षण एक सुन्दर पूर्त्ति की जिसे सुन कर साधुवाद-ध्वनि से वह स्थान गूँज उठा था। भारतेंदु ने संवत् १९२७ में इनकी कविताशक्ति से प्रसन्न हो, अपनी 'कविवचन सुधा' (कातिक कृष्ण ३०) में इनकी कविता छाप कर यह नोट लिखा था—"इस विलक्षण बालक की बुद्धि भी विलक्षण ही है और अवस्था इसकी केवल बारह वर्ष की है। हम इसके और समाचार भी लिखेंगे।"

इस प्रकार, उस बाल्यकाल में ही इन्होंने कई बार अपनी प्रतिभा और कविता-शक्ति से लोगों को चकित कर दिया था। एक ऐसे ही अवसर पर भारतेंदु ने इन्हें 'सुकवि' की उपाधि दी थी।

व्यासजी संस्कृत के असाधारण विद्वान् थे। आशुकवि भी थे। इनका संस्कृत उपन्यास 'शिवराज विजय' संस्कृत-साहित्य का एक

अमर ग्रंथ है और विशेषतः सरल, सर्वोपयोगिनी भाषा की दृष्टि से अब तक बेजोड़ है।

हिंदी की भी इन्होंने यथेष्ट सेवा और प्रचार किया है। ये अपने समय के कुशल वक्ताओं में से थे और संपूर्ण भारतवर्ष में घूम-घूम कर इन्होंने व्याख्यान दिये थे। ये बहु-भाषा-विद् थे। 'बिहारी' पर कुंडलियोंवाला इनका ग्रंथ 'बिहारी बिहार' हिंदी में प्रसिद्ध है।

आश्चर्य वृत्तांत की रचना संवत् १९४१ में प्रारंभ हुई थी और समाप्ति संवत् १९४५ में। इसका प्रथम मुद्रण, व्यास यंत्रालय, भागलपुर से संवत् १९५० में हुआ था।

भारतेंदु काल में, लाला श्रीनिवासदास, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट, आदि जिन लेखकों ने गद्य द्वारा हिंदी-सेवा की है, उनमें व्यास जी का भी एक विशिष्ट स्थान है।

संस्कृत के प्रकांड विद्वान् होने के कारण इनकी भाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग कुछ अधिक होने पर भी, सब मिला कर इनकी भाषा सरल और बोलचाल की है—

"हम लोग थाक मिटाने के लिए थोड़ी देर तक उन्हीं पेड़ों के नीचे बैठ गये और फिर कर पृथ्वी की ओर ताके तो एक विचित्र शोभा देख पड़ने लगी। कहीं कहीं ऊँचे ऊँचे तालों के झमाट, कहीं पीपल बड़ आदि, कहीं और और सैकड़ों जंगली पेड़, कहीं पत्थरों के ऊँचे चट्टानों के टिल्ले और कहीं झरनों से झरझराता निर्मल जल, ये सब अपनी आंखों के सामने एक चित्र की भाँति फैले थे।"

"थोड़ी दूर चलते ही मेरा शरीर चमक उठा और चित्त में अचानक यह बात आ गई कि कहीं अब मैं इस स्थान को भूल जाऊं और इधर ही उधर चक्कर मारता फिरूँ, इन साथियों को न पाऊँ तो क्या होगा? बस, चट लौट के फिर उसी स्थान में आ खड़ा हुआ। अब न तो मृदंग की आशा छोड़ वहां ही बैठने का जी करता है और न संग छुट जाने के डर से उन्हें छोड़ मृदंग ही के

अनुसंधान में जाने का साहस होता है। बेर बेर उन खुर्राटे मारते साहब और बंगाली बाबू की ओर देखता था और बेर बेर जिस ओर से वह मृदंग की धमक जी को घसीटती थी, उस ओर देखता था। फिर न रहा गया तब अपने दुपट्टे को एक तला से दूसरी तला तक ऐसा तान दिया कि दूर से देख पड़े। थोड़ी दूर जाके फिर लौटा और एक साँवले फूल को चुटकी से मल, उन सूते हुए घन-चक्करों के सामनेवाली एक चट्टान पर लिख दिया कि अभी आता हूँ, कहीं जाना मत।"

इनकी भाषा साधारणतया मुहावरेदार है। आज भी, प्रेमचंद आदि-दो-एक लेखकों को छोड़, कितने लेखक मुहावरेदार भाषा लिखते हैं? सत्य तो यह है कि मुहावरे एक प्रकार से उर्दू की संपत्ति हो गये हैं और उर्दू-साहित्य से हिंदी-साहित्य में पदार्पण करनेवाले या उर्दू से सुपरिचित लेखकों की भाषा ही आज भी मुहावरेदार देख पड़ती है। मुहावरों का अप्रचार या कमी देख कर ही 'हरिऔधजी' ने 'चौपदों' की सृष्टि प्रारंभ की 'जिनकी प्रत्येक पंक्ति में कोई न कोई मुहावरा अवश्य खपाया गया।' व्यासजी उर्दू से अपरिचित न थे, पर आज की तरह उस काल में भी हिंदी-उर्दू का झगड़ा था और प्राचीनता के पक्षपाती होने के कारण कदाचित् ये उर्दू-शब्दों तथा उसके मुहावरों से बचे रह गये। तो भी, उस समय तक जो मुहावरे उस समय की हिंदी ने अपने में समेट लिये थे; उनका प्रयोग व्यासजी ने प्रायः किया है। साथ ही यह भी ध्यान रखने की बात है कि संस्कृत में महाकाव्य लिखनेवाले इस कवि ने पांडित्य प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित हो, कहीं भी ऐसे क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं किया है, जैसों का, क्लिष्टता-द्वेषी इस युग में भी, कोई-कोई 'गुरोगिरः पञ्च दिनान्यधीत्य' तथा संस्कृत को दूर ही से सूँघनेवाले कवि, प्रायः कर डाला करते हैं।

व्यासजी की वर्णनशैली अत्यंत रोचक है, जो इस प्रकार की पुस्तकों की प्रधान विशेषता होनी चाहिए। इसके उदाहरण में

संपूर्ण पुस्तक ही है। इनके वर्णनों में चित्रोपमता की अच्छी बहार देखने को मिलती है।

"फिर थोड़ी देर उसी शीतल मंद सुगंध वायु का अनुभव कर, उठ कर मैंने अपने साथियों को जगाया। वे भी; ऊँ ऑ कर, करें मरें हो, अँगुली तोड़, बांह मरोड़, देह ऐंठ, लोट पोट कर, उबासी ले, आंखें मल, कपड़ा सम्हाल, इधर उधर देख औ आँख मिच-मिचाते उठ बैठे।"

ऐसी छोटी सी पुस्तक में, जिसमें कवित्व को अवकाश मिलने का प्रसंग प्रायः नहीं मिलता है, जहाँ-तहाँ व्यासजी ने उसकी औचित्य-पूर्ण छटा दिखलाई है—

"इतने में तो नील गंभीर तालाब पर पौरते हुए हंस की सी, पन्ने की थाली में धरे मक्खन की सी, सघन तमाल में लगे श्वेत फूल के गुच्छे की सी, श्याम मूर्ति पर लगे चंदन विंदु की सी, यमुना में पौरते बलभद्र की सी, नीलांबर में काढ़े जरी के बूँटे की सी, हबशियों की फौज में घुसे अँगरेज की सी, काले कोट पर लटकते चांदी के तकमे की सी, औ आकाश में उड़ी जाती आर्यों के यश की पोटरी की सी शोभा देता हुआ चंद्रमा आकाश में देख पड़ा।"

व्यासजी का प्रकृति-निरीक्षण भी बहुत सूक्ष्म है। जैसे उनकी सावधान आंखों से कोई छोटा से छोटा दृश्य भी अपने को छिपा न पाया हो—

"सामने देखा कि एक लता की झमाट में से गुलाब के फूल ऐसी गुलाबी चिड़िया बोलती हुई निकली औ चोंच हिला, गर्दन घुमा, इधर उधर देख, फुदक फुदुक, पांखें फरफरा, पांखों की जड़ों को चोंच से खुजला, आगे झुक, चोंच उठा, पोंछ हिला, कुदुक मारती उड़ी कि हम सबों की आंखें भी उसी के साथ नाच उठीं। वह चिड़िया गिरह खाती, घेरा लेती, कभी पृथ्वी की ओर चूती और कभी पांखें फटकार ऊपर उचकती, चटपट दक्खिन से उत्तर

की ओर चली गई और हम लोगों की आँखें भी अपने साथ ही ले गई।"

व्यासजी की एक और विशेषता है, अनुकरण-शब्दों का प्रयोग। इसके वर्ण्य विषय के प्रभाव और चित्रोपमता में निःसंदेह वृद्धि होती गई है।

प्राचीन लेखकों की जिंदादिली जो उनकी भाषा और वर्णनों में झलकती मिलती है, आज के लेखकों में नहीं पाई जाती। व्यासजी उस संस्कृत-साहित्य के मार्मिक विद्वान् थे, जिसमें हास्य-रस का अभाव ही कहना चाहिये और जिसमें हास्य के आलंबन प्रायः पेटू मोदकप्रिय विदूषक ही पाये जाते हैं; लेकिन इन्होंने इस छोटी-सी पुस्तक में शिष्ट हास्य के अनेक प्रसंग उपस्थित किये हैं जो पाठकों को गुदगुदा देते हैं। इसकी सिद्धि के लिये व्यासजी ने इस पुस्तक में एक भीरु बंगाली की कल्पना भी कर ली है। दो उदाहरण देखिए—

"देखते ही देखते हमारे पूज्य गयावाल को जटा निकल आई। ....मैं कहीं रहा हूँ, बाबाजी को देख ही रहा हूँ कि बाबाजी का मुँह मेरी स्त्री का सा हो गया और घाघरा औ ओढ़नी सब छटक गई। अब बाबाजी कहां? वही स्त्री सामने बैठी है, पूरा मुँह उघाड़ा भी नहीं है, त्यौरी चढ़ी है, आँखों में कुछ ललाई है, साँस लंबे हैं, आँख के कोनों में कुछ कुछ पानी की बूँदें आ रही हैं।"

"लोग नायिकाओं के मुँह को कमल सा कह मारते हैं। पर मुझे कवियों की समझ पर हंसी आती थी कि उनमें कमल ऐसा क्या आकार देखा? छि छि! कवि लोगों के कहने अनुसार एक ऐसी मूर्त्ति बनाई जाय जिसमें मुँह के स्थान में चाँद या कमल लिख दिया जाय, आँखों के ठिकाने दो मछली, और आँखों के कोनों के बदले दो चोखे तीर बना दिये जायं, त्योंही कान के ठिकाने सांप, गले के बदले कबूतर, छाती के स्थान पर हाथी का सिर बना दिया जाय, चोटी के ठिकाने मोटी सी काली नागिन,

दोनों बांह कमल की नाल, हाथ कमल, कमर के स्थान एक दम खाली छोड़ दें और यों हीं कमर के नीचे भी अपना जोर लगाते चले जायँ। हम आप लोगों से पूछते हैं, कहिये तो, यह कैसी डरावनी राछसी ऐसी मूरत तयार होगी?"

पुस्तक में आये चरित्रों का तारतम्य और निर्वाह सुन्दरता से हुआ है। किसी बात को सिद्ध करने की तर्क-शैली के उदाहरण प्रतिदिन के हैं। यह विशेषता इसलिए है कि व्यासजी एक कुशल वक्ता और तार्किक शास्त्रार्थी थे। इनकी बहुज्ञता का भी थोड़ा-बहुत परिचय इस पुस्तक से होता है। कहानी स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ती चली गई है और पूर्वापर का अविरोध होने में सुगंध हो गया है। समाप्ति पर भी आगे पढ़ने की उत्सुकता बनी रहती है और इतनी शीघ्रता से समाप्त होने पर कुछ क्षोभ और असंतोष होने लगता है। कहानी कहने की यह उत्कृष्ट सफलता है।

इधर प्रस्तुत हिन्दी-साहित्य के कई प्रमुख इतिहासों में व्यासजी की गद्य-शैली के विवेचन के प्रकरण में, इस पुस्तक के निर्देश के अभाव से ऐसा लगता है कि उन लेखकों की दृष्टि कदाचित् इस पर न पड़ी थी। जो हो, यह बात उन लेखकों की असावधान दृष्टि की ही परिचायक है, पुस्तक की गुणहीनता की नहीं।

व्यासजी की गद्य-शैली के विषय में एक लेखक लिखते हैं—"पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी तक जितना हिंदी गद्य का विकास हो चुका था उसको देखने से यह स्पष्ट होता है कि साधारणतः भाषा में लचरपन नहीं रह गया था। उसमें प्रौढ़ता आ गई थी। परन्तु पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ऐसे लेखक, अपवाद स्वरूप, इस समय भी भाषा की प्राचीनता का आभास दे रहे थे। व्यासजी की भाषा में जो चलतापन और सारल्य था, वह बड़ा आकर्षक था वक्तृता की भाषा में जो एक प्रकार का बल-विशेष पाया जाता है वह इनमें अधिकांश रूप में मिलता है। स्थान स्थान पर एक ही बात को वे पुनः इस प्रकार और इस विचार से दोहरा देते थे

कि उसमें कुछ विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती थी।..............भाषा में गँवारूपन और शिथिलता आ गई है।..........इनकी भाषा बड़ी भ्रामक हुई है।"

पहले तो उक्त उद्धरण में ही एक दूसरे की विरोधिनी बातें पाठक पढ़ लें। इन आक्षेपों का उत्तर देने का मन ही नहीं होता क्योंकि यह उद्धरण जहाँ से दिया गया है उस 'ग्रन्थ का परिचय' लिखते हुए दिवंगत श्रद्धेय पं० रामचन्द्रजी शुक्ल ने लिखा है—"इस पुस्तक में कोई खास कसौटी काम में नहीं लाई गई है। लेखकों की अनुरंजनकारिणी विशेषताओं के निरूपण का ही मुख्य दृष्टि से प्रयत्न किया गया है। अतः इस में कही हुई बातों को किसी अधिकारी के निर्णय के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा एक तत्पर हृदय पर पड़े हुए संस्कार या प्रभाव के रूप में ग्रहण करना ही समीचीन होगा।"

यहाँ न तो व्यासजी की विशेषताओं का उद्घाटन करने का प्रयत्न या समय ही है, न उनकी विस्तृत आलोचना का। यह तो चलते ढंग से कुछ साधारण बातें कही गई हैं।

इस पुस्तक का अंतिम संस्करण व्यासजी महाराज के सुपुत्र शतावधान पं० राधाकुमार व्यास द्वारा हुआ था। उनके युवावस्था में ही कालकवलित हो जाने तथा उनके चिरजीवी श्रीकृष्णकुमार व्यास के एकदम बालक होने के कारण इसका पुनः प्रकाशन बीसों वर्ष न हो सका। यह हर्ष का अवसर है कि अब श्री कृष्णकुमार व्यास जी ने इधर ध्यान दिया और अपने पितामह के ग्रन्थों का पुनः प्रकाशन आरंभ किया।

इस पुस्तक में अनेक स्थलों पर संस्कृत, बंगला आदि के टुकड़े हैं। उनका हिंदी-अनुवाद इस संस्करण में दिया गया है। जहाँ-तहाँ कुछ नये विराम तथा पूर्ण विराम के चिह्न लगाये गये हैं। अर्धविंदु का प्रयोग व्यासजी ने नहीं किया है, अतः उसे नियम

मान कर, इस संस्करण में भी इसका पालन किया गया है। इस कार्य में जो त्रुटियाँ हों उनके लिए मैं ही दायी हूँ।

श्री कृष्णकुमार व्यास सरल, सहृदय और प्रतिभाशाली हैं। मुझे तो वे दूने प्रिय हैं। एक तो मित्र के नाते दूसरे इतने बड़े कलाकार के पौत्र होने के नाते। एक चिरस्मरणीय युग की प्रतीक-स्वरूप भाषावाली अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन कर, 'आम्रश्च सिक्तः पितरश्च तृप्ताः' के अनुसार ही अपने पितामह के सम्मान और कीर्त्तिरक्षा के साधन हो कर; उन्होंने पाठकों को कृतज्ञ किया है इसमें संदेह नहीं।

काशी,
५-११-४१

—बलदेवप्रसाद मिश्र।

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

"संसारेऽपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यस्ति तेनापि किम्"

[इस संसार के रहते यदि कोई दूसरा इंद्रजाल भी है, तो इससे क्या? (कवि का अभिप्राय यह कि संसार ही सब से बड़ा इंद्रजाल है।)]

चित्रकूट से कुछ दक्षिण को झुकते, पुष्करिणी तीर्थ के पास विराधकुण्ड नामक एक तीर्थ है। वहाँ की भूमि भूपहाड़ों के कारण अत्यन्त कठिन औ पाषाणमय है। वहाँ लगढग सोलह सत्रह हाथ की चौड़ाई का गोल एक कुवाँ ऐसा गहरा है, कि उसके देखने ही से ऐसा आश्चर्य होता है कि इन चट्टानों को तोड़ कर इस घोर जङ्गल में यह किस बली ने खुदवाया है। वहां यह बात प्रसिद्ध है कि श्री रामचन्द्रजी ने विराध राक्षस के गाड़ने को गड़हा करने के लिये पृथ्वी में बाण मारा, तब पाताल तक छेद हो गया था, सो यही है। अब तक लोग उसमें बड़े बड़े पत्थरों के ढोके छोड़ते हैं, पर वह ऐसा गहरा है कि खड़का तक नहीं सुन पड़ता। वह कितना गहरा है औ कैसा है उसके निश्चय करने को अंगरेज लोग बहुत दिनों से पीछे पड़े हैं पर अभी तक कुछ पता नहीं लगा। १ मार्च सन् १८८४ को अमेरिका के प्रसिद्ध प्रोफेसर, 'लूफ़ लिरपा' (Loof Lirpa) वहां पहुँचे, उसी के पास तम्बू तान डेरा डाला औ दूरबीन लगा नाप-जोख कर यह निश्चय किया कि किनारों की तरफ चारों ओर सन्धी से अनेक घास फूस औ पेड़ वगैरह निकल आये हैं। यदि किसी किनारे से कुछ लटकाया जायगा तो उन झाड़ झंखाड़ों में फंस जायगा।

इसलिये जैसे कूप में घरारी पर से बड़ा घड़ा लटकाया जाता है, वैसे ही एक बड़ी घरारी पर से कल के द्वारा एक भारी लंगर इसके बीचोबीच लटकाया जाय। उसीसे इसकी गहराई का पता लगैगा। बस ५ तारीख को कल औ लङ्गर मँगाने के लिये बम्बई पत्र भेजा गया और १४ तारीख को सब सामान आ पहुँचा औ ३१ मार्च तक खोद खाद गाड़ गूड़ कर घरारी ठीक ठीक जमा दी गई।

अब १ एप्रिल को सवेरे ७ बजे प्रोफेसर साहब के साथ और भी कई अङ्गरेज लोग चारों ओर दूरबीन ले ले कर बैठे औ घरारी पर से ४५ मन का लंघर लटकाया गया। उस गड़हे में बड़ा ही घोर अन्धकार था, इस लिये प्रोफेसर साहब ने इस लंघर में एक बड़ा लम्प भी बांध दिया था कि ज्यों ज्यों नीचे जाय त्यों त्यों उजाला भी होता जाय औ ऊपर से सब कुछ देख भी पड़ता जाय। बस धीरे धीरे लंघर लटकने लगा औ उस अन्धेरे में के पेड़, झाड़ झंखाड़, मकड़ियों के जाले, सांपों की केचुलियां, बिल औ सन्धों में बैठे बिच्छू आदि जन्तु देख पड़ने लगे। प्रोफेसर साहब उसे देख देख अपनी बही में कुछ कुछ लिखते जाते थे औ वह लटकता जाता था। यहाँ तक कि दूर होने के कारण अन्त में वह लंघर केवल एक गुब्बारे या तारे ऐसा चमकने लगा औ उसके चारों ओर केवल अन्धेरा देख पड़ने लगा।

नौ बजने के समय साहब ने निश्चय किया तो वह लङ्गर दो माइल औ (३३७) तीन सौ सैंतीस गज नीचे जा चुका था। जब पन्द्रह मिनट और बीते तब वह लंघर एकाएकी लटकने से रुक गया। साहब ने हिसाब किया तो इतनी देर में ४५० गज और नीचे पहुँचा था। अर्थात् कुल दो माइल और ७८७ गज नीचे जा पहुँचा था।

जब इन लोगों ने यह निश्चय किया कि अब लंघर का नीचे की ओर लटकाना किसी प्रकार हो ही नहीं सकता तो हार कर

ऊपर ही खींचने लगे। पर खींचने के समय उस लंगर का बोझा बढ जाना देख साहब को औ और और लोगों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ औ चकचिहाकर देखने लगे कि देखें, लंगर के साथ उलझा पुलझा क्या आता है।

फिर क्रम से पहले धीरे धीरे उस लंगर की लालटेम चमकने लगी, फिर उसका भी कुछ कुछ आकार देख पड़ने लगा, फिर जब तक लोग एक टक लगाकर देखते ही हैं तब तक तो उस गम्भीर गड़हे से एक बड़ी गूंज के साथ ध्वनि भी आने लगी। तब तो सभों को और भी आश्चर्य हुआ और ध्यान देकर सुनने से जाना गया कि "धीरे धीरे" यह शब्द है। साहब को आदमी के शब्द का निश्चय होते ही लंगर धीरे धीरे खींचा जाने लगा और थोड़ी देर में यह शब्द स्पष्ट सुन पड़ने लगा। फिर देखा कि जाले औ सूखी लताओं के साथ एक आदमी उस लंगर में चिपट रहा है। देखते ही साहब ने औ और लोगों ने भी उसे धीरज धराया कि "घबराओ मत, लंगर को जोर से पकड़े रहो"।

ज्यों ही लंगर ऊपर आया त्यों हीं कल बल से साहब ने उस आदमी को लंगर से उतारा औ उसके जाले छुड़ा, धूल झाड़ी, पर वह मारे घबराहट के एकाएकी बेचेत-सा होकर हांफता हुआ लेट गया।

उसके कपड़े लत्ते से जान पड़ता था कि वह राजपुताने की ओर का रहनेवाला, किसी भले घर का आदमी है। झट छाया में ले जा कर, लोगों ने उसे पानी के छींटे दे, हवा कर ठंढा किया, घण्टे भर में वह अपने में आया। जल पीने के अनन्तर उसने पूछा कि यह कौन स्थान है? समीप कौन पहाड़ी है? यहाँ से गयाजी कितनी दूर हैं? औ आप लोग क्यों जुटे हैं?

ये प्रश्न सुन के लोग और भी चकित हुए, क्योंकि इस समय ये कई बातें आश्चर्य की उपस्थित हुईं कि पहले तो उस विराध

कुण्ड ही की गहराई बहुत लम्बी पाना और फिर उसमें से विचित्र रीति से एक आदमी का निकलना, तिस पर भी वह आदमी राजपुताने की ओर का, और फिर भी वह पूछने लगा कि यहाँ से गया जी कितनी दूर हैं।

उस समय उन लोगों को गड़हे की गहराई का कौतुक छोड़, इसकी बातें सुनने का एक नया ही कौतुक आ उमगा और चारों ओर से भीड़ों के ठट्ट जमने लगे।

पहले उसे संक्षेप से यह कह सुनाया गया कि यह चित्रकूट के पास का जङ्गल है और भन्ना पन्ना, पथर कछार वगैरह की राजधानी यहाँ से समीप है। वे पहाड़ भी उसी लगाव के हैं। यहाँ से गया जी सैकड़ों कोस पर हैं तथा हम लोग आज इस गड़हे की गहराई नापने को इकट्ठे हुए थे और इसी लिये हम लोगों ने यह लंगर लटकाया था। पर इस लंगर के साथ आपको देख, अब हम लोगों को कैसा आश्चर्य और कौतुक हो रहा है सो कह नहीं सकते। आप कौन हैं? कहाँ के हैं? कैसे इस गड़हे में आये? और कब से इसमें हैं। वहाँ का क्या हाल है? हम लोगों को बड़ा ही आश्चर्य है कि आप इधर से गिर के भीतर जाते तो जीते कैसे? कोई सुरंग होती तो क्या इस अङ्गरेजी राज्य में भी छिपी रहती? भूगर्भ की किसी विचित्र सृष्टि के आदमी होते तो हम लोगों से झट पट बोल चाल कैसे मिलती?

यह सुन वह आदमी और भी आश्चर्य में भर उठा, इधर-उधर ताकने लगा और बोला कि "क्या! गयाजी सैकड़ों कोस पर हैं?" वे बोले "हां हां, सैकड़ों कोस पर हैं" यह सुन वह चार पाँच मिनट तक चुप होकर मन ही में विचारने लगा कि "ओः! परमेश्वर की क्या माया है! मैं कहाँ का रहनेवाला, कहाँ सैर करने गया! कहाँ जा पड़ा!! और कहाँ आ निकला!!!" फिर कुछ ठठक कर प्रगट बोला कि "अच्छा आप लोगों को मेरा इतिहास सुनने का कुतूहल हो तो सुनिये, मैं कहूँगा। मेरी कथा बड़ी लम्बी

चौड़ी और आश्चर्य-मयी है" फिर जब चारों ओर से "हाँ हाँ कहिये, कहिये, हमारा बड़ा जी लगा है" यह ध्वनि हुई तो वह बोला कि "अच्छा तो मैं बड़ी देर से प्यासा हूँ, थोड़ा जल पी लूँ तो स्वस्थ होकर कहूँ।"

फिर उसने उठ कर, पास ही वाले एक पहाड़ की चट्टान के बीच से झरते हुए झरने का टटका पानी पिया और हाथ मुंह धो, आंखें मल, रुमाल से मुंह पोंछता हुआ, फिर उसी समाज में आ बैठा और चारों ओर से लोगों को एकटक अपनी ही ओर ताकता हुआ देख, अपनी कथा कहने लगा।

"मैं राजपुताने का रहनेवाला एक वैश्य हूं पर मैं बहुत दिन से कलकत्ते में कोठी का काम करता हूं और प्रयाग काशी पटने आदि स्थानों में बेर २ आता जाता रहता हूं। नये नये नाटकादि तथा संवादपत्रों को उलट पुलट किया करता हूं, इसलिये, मेरी बोलचाल से आप लोग कुछ भी न पहचानियेगा कि यह पछाँही है, पर हाँ, हम लोग अपना वेष नहीं बदलते हैं।

मैं कलकत्ते से अपने पिता का श्राद्ध करने गयाजी आया था। मैं अकेला न था। साथ दस पन्द्रह पुरुष और भी थे। हम-लोगों ने तीर्थ में जा विधिपूर्वक श्राद्ध किया। तब इच्छा हुई कि अब गया के इधर उधर घूमकर पहाड़ों की भी हवा खायँ। पहले हम लोग बुद्धगया गये। यह गया जी के दक्षिण लगभग तीन कोस की दूरी पर है। वहाँ एक बड़ा भारी बुद्ध का मन्दिर है, जिसे बहुत पुराना और टूटा फूटा समझ कर पहले ब्रह्मा के बादशाह ने मरम्मत करवाई थी और अब सर्कार अङ्गरेज बहादुर की ओर से भी बड़ी मरम्मत कराई जा चुकी है।

सचमुच ऐसा ऊँचा और विशाल मन्दिर मैंने आज तक कहीं कोई नहीं देखा था। वहाँ के स्थान स्थान में बुद्ध के चिह्न देखने से मुझे इस देश में किसी समय बौद्ध मत के पूरे फैल जाने का स्मरण होता था।

वहाँ एक सम्पन्न महन्त की बड़ी गद्दी है। इनको वहाँ के छोटे राजा ही कहना चाहिये। इनके यहाँ साधुओं की जमात है और विदेशियों को नियम से सीधा मिलता है। ये लोग शङ्करमतानुयायी हैं। इनके देखने से मुझे साथ ही यह भी स्मरण हुआ कि स्वामी शङ्कराचार्य कैसे प्रतापी और बौद्धमत के विरुद्ध थे कि जहां बौद्ध का मन्दिर, वहां साथ ही उनकी गद्दी भी अब तक जम रही है।

फिर हम लोग ब्रह्मयोनि के ऊँचे पहाड़ पर गये। यह गया के बहुत समीप है। इस पर से गया और साहबगंज के नगर भर की शोभा देख पड़ती थी। ऐसा जान पड़ता था कि किसी ने उस नगर का चित्र लिख, पैर के पास धर दिया है। जैसे काशी और कलकत्ते में मिण्ट और हाईकोर्ट, नगर भर की शोभा देखने को ऊँचे २ स्थान हैं, उन्हीं की टक्कर में मुझे गया में ब्रह्मयोनि का पहाड़ जान पड़ा।

मैं उसे भलीभाँति देख भाल कर, फिर बस्ती में आया, वहाँ लोगों के मुंह से बराबर के पहाड़ की बड़ी प्रशंसा सुनी कि वह अभी तक सिद्धस्थान है और वहां बहुत तपस्वी मुनि लोग भी रहते हैं। तब मैं बड़ा उत्कंठित होकर चार पाँच इष्ट मित्र और नौकरों के साथ उस पहाड़ की ओर चला।

यह पहाड़ गया से कुछ दूर पड़ता है औ मैं सैलानी आदमी, इसलिये दूसरे दिन पहुँचा। राह में कई एक गांव पड़े। वहां की विचित्र भाषा औ विचित्र पहनाव देख, मेरे चित्त में और ही भाव होता था। एक निरे गयानिवासी और दूसरे एक टटके मैथिल भी मेरे साथ पड़ गये थे। जब वे एक दूसरे से बातें करते थे तो विचित्र ही "कहलथू सुनलथू" औ "कहैछी सुनैछी" की झड़ी सुन पड़ी थी। और तो था ही, पर इन के बात बात में 'थू' और उनके बात में 'छी' था।

बराबर नामक पहाड़ दूर ही से देख पड़ने लगा। जान

पड़ता था कि वह भी सिर उठा कर हम लोगों को देख रहा है। इसके सबसे ऊँचे शिखर पर एक पेड़ भी बड़ा भारी देख पड़ता था, जैसे सिर पर तुर्रा हो। इसी के पास एक पहाड़ था। इसका नाम लोगों ने कौआडोल बताया। यह बात भी लोगों से जानी गई कि इस पर एक बड़ी भारी शिला है, वह केवल कौए के बैठने से भी हिल जाती है। मैंने भी मान लिया कि क्या आश्चर्य है। कोई शिला ऐसी ही तराजू ऐसी होगी जो कौए का बोझा भी किसी ओर न सम्हाल सकै।

यों सांझ होते होते उस बराबर के पहाड़ की जड़ में पहुँचे। उस समय एक तो सांझ होने के कारण अन्धकार होता ही आता था फिर उस पहाड़ के पेड़ों ने तो गझिन होने के कारण, एका-एकी नील ही स्वरूप धारण किया। वह आकाश चूमता हुआ ऊंचा पहाड़—वह श्याम पेड़ों की घटा—वह ठण्ढी हवा का सर्राटा—वह बनैले जन्तुओं का शब्द—वह बड़ी कन्दराओं का गूंजना—औ वह एक विलक्षण सन्नाटा, इस समय भी मुझको प्रत्यक्ष ही सा जान पड़ता है।

फिर हम लोगों का एक साथी, जो मार्ग जानता था, आगे आगे चला, हम लोग पीछे पीछे चले। उसी पेड़ों के झमाट में, एक ऊंची सी भूमि पर चढ़ना आरम्भ किया। पैर पैर पर भालू का भय होने लगा। मेरे पास कोई शस्त्र न था पर मैंने अपनी छड़ी ही कस के थामी। सावधान नेत्रों से चकपकाकर चारों ओर देखता हुआ चला। ऊपर चढ़ जाने से, उस मन्द अन्धेरे में भी यह देख पड़ने लगा कि यह पहाड़ कङ्कणाकार चारों ओर घूम गया है और बीच में इसने थोड़ा अवकाश छोड़ दिया है औ उसी पहाड़ी के घेर में पूर्व की ओर यह चढ़ान वाली भूमि थी मानो घेर में जाने का यह द्वार था। उस समय मुझे सेब्न, नेपाल आदि दुर्ग स्थानों का स्मरण होने लगा। यह भी मेरे चित्त में

आया कि ऐसे ही स्थानों में महाराष्ट्रों की फौज लेके शिवाजी क्रीड़ा करते थे।

तब फिर उतार की भूमि आई। एक ने कहा "इस ठिकाने भूत पिशाच अधिक रहते हैं, कोई सङ्ग छोड़ के आगे पीछे मत होना।" दूसरे ने कहा "हां, यहां ही बैठ के आस लगाये रहते हैं कि हमें कोई गया में पिण्ड दे"। मैं दोनों की बात सुन के मनीमन हंसा औ धीरे से कहा कि "हां, पर यहां के भूत, भालू औ बाघ हो के विचरते हैं"।

इतने में रात हो गई, चन्द्रमा ऊगे, दूध की सी वर्षा होने लगी, झरनों का जल चमाचम चमकने लगा, हवा से पेड़ों का कांपना देख पड़ने लगा, और चारों ओर बिखरे हुए काले पत्थर भालुओं का भ्रम देने लगे।

मैं बहुत थक गया था, सो चुपचाप एक ऊंचे पत्थर पर बैठ गया। मेरे साथियों में से यह बात किसी ने न जानी औ मैंने भी न कहा, समझा कि झट साथ हो ही जाता हूं, कहूं क्या।

उस उमड़े हुए समुद्र ऐसे पहाड़ में मेरी आंख जा लगी, लगभग दो मिनट के मैं उधर ही देखता रहा। फिर चित्त में कुछ भय हुआ कि लोग यहां भूत बतलाते थे, कहीं सचमुच ही कोई न आ जाय। इधर तो डर का अङ्कुर जमा और उधर देखा कि कोई साथी नहीं, सब क्या जाने किधर चले गये! मैं चकचिहा कर देखने लगा, इतने ही में तो ऐसा जान पड़ा कि किसी ने पीछे से मेरे कन्धे पर हाथ लगाया। साथ ही चिहुँक कर मैं पीछे फिरा और देखा कि एक लम्बा और मोटा पुरुष खड़ा है। जिसकी पीली जटा, पीठ पर छटक रही है, डाढ़ी इतनी लम्बी है कि कमर के नीचे तक आ रही है, लाल नेत्र हैं, एक हाथ में खप्पर है औ बगल में डण्डा है। मुझको बड़ा ही भय होता, पर मैंने देखा कि वह एक हाथ की तर्जनी अंगुली नाक पर रखके मुझे चिताता है कि चुप! चुप!

मैं चकचिहा कर लगढग एक मिनट तक यों ही पत्थर की मूर्त्ति की भांति ठठका रहा—फिर देखा कि वह एक ओर चला औ मुझे अपने साथ ले चलने की सूचना की। पहले मेरे चित्त में कुछ भाव रुकने का सा हुआ, पर फिर बिना सोचे बिचारे मैं उसके पीछे हो लिया औ कुछ दूर चलने पर मेरे चित्त में अनेक भाव उठने लगे।

पहले मैंने सोचा कि जैसा लोग कहते थे, यह कहीं कोई भूत ही तो नहीं है? पर साथ ही मैंने मन ही मन हनुमान जी का मंत्र जपा, जो मेरे पिता ने किसी समय बताया था। उसके जपने पर भी देखा कि उस जटिल की कोई हानि नहीं हुई। तब एक बेर अचानक चित्त में यह भाव भी हुआ कि यह कहीं कोई रूस का जासूसी तो नहीं है! पर उसकी चाल ढाल औ जंगल में घूमने से यह सन्देह भी मिटा, फिर, एकाएकी यह जी में आया कि यह कोई बाममार्गी अघोरी तो नहीं औ मुझे भी कहीं ले जाकर मेरा बलिदान तो न कर डालेगा! यह सोचते ही मेरी छाती धड़क उठी, रोएं खड़े हो गये, पसीने आ गये, मुंह पीला पड़ गया, औ हाथ पांव थर्रा उठे! तब तक वह जटिल कुछ आगे निकल गया था औ दूर पड़ गया था। मैंने सोचा कि जटिल देखता तो हई नहीं, मैं अपनी दूसरी राह लूं। इतने में तो जटिल ने लौट कर समीप आ, झट मेरा गट्टा पकड़ा। मैं साथ ही चमक उठा तब जटिल ने धीरे से मेरे कान में कहा कि मुझ से डर मत, मैं तेरा भला चाहता हूं बुरा नहीं, चला आ। मैं भी अनेक प्रकार विचार करता उसके पीछे पीछे चला।

सामने ही एक बड़ा भारी काले पत्थर का गजराज ऐसा ऊंचा स्थान था। धीरे धीरे जटिल उस पर चढ़ा और उसके साथ मैं भी चढ़ा। वहां देखा कि एक छोटे से बड़ के पेड़ की छाया में जटिल बाबा का आसन है, पर उसके पास थोड़ी

कुशा के सिवाय और कोई सामग्री नहीं है। वहां जटिल बाबा जी बैठे औ मुझको भी बैठने की आज्ञा दी। पर मेरे बैठते ही जटिल ने कहा कि मैं तुम्हारी सब कथा जानता हूँ, तुम अपने साथियों से बहक गये हो सो चिन्ता मत करना, मैं झट मिला देता हूं, पर थोड़ी देर स्वस्थ होकर ठहरो औ मुझसे कुछ भय मत करो, मैं सबको सुख देना चाहता हूं, किसी को दुःख देना यह मूर्ख औ पापियों का काम है। यह मधुर, गम्भीर औ धार्मिक वचन सुन, मुझे जो आनन्द हुआ जो शान्ति हुई औ जो सन्तोष हुआ सो मैं कुछ कह नहीं सक्ता। बाबाजी का वह वचन अब तक मेरे कान में गूंज रहा है औ उसके स्मरण से जान पड़ता है कि अभी तक बाबाजी की वह शान्त रसमयी मूर्ति मेरे आगे ही है औ वे मुझसे कह रहे हैं कि "डरो मत, डरो मत"।

मैंने हाथ जोड़ के नम्रता से कहा कि "स्वामी ! आपके चरण के शरण होने पर मृत्यु का भी कुछ भय नहीं है, साधारण भय क्या होगा"। क्षणमात्र बाबाजी भी चुप रहे। तब मैंने कहा कि महाराज ! मुझको बड़ी प्यास लगी है, क्या कुछ जल मिल सक्ता है ? बाबा जी ने कहा ठहरो मैं अभी लाता हूँ। इतने में बाबाजी कुछ आड़ में चले गये औ एक तुम्बा जल औ थोड़ा सा कन्द झट पट ले आये, औ गम्भीर स्वर से बोले कि "लो कुछ खा के पानी पीओ"। मैंने प्रणाम करके वह कन्द लिया औ ज्यों ही एक टुकड़ा मुँह में रखा, त्यों ही मेवा मिसरी को मात करनेवाले उस अपूर्व स्वाद के आनन्द में मग्न हो गया। जब मैं उसके स्वाद की प्रशंसा करने लगा तो बाबाजी ने कहा कि इसमें और भी यह गुण है कि इसके खाने पर पन्द्रह दिन तक भूख नहीं लगती। यह सुन मैं और भी चकित हुआ। खाकर मैंने वह अमृत ऐसा जल पिया, स्थिर होने पर बाबा जी ने कहा कि—

"बेटा ! उस समय तुम्हारे ठीक पास, एक पेड़ की आड़ में

एक बड़ा भयङ्कर बाघ था। तुमारी गन्ध पाकर वह तुमारी खोज में था, तुम कुछ भी आगे बढ़ते तो उससे भेंट हो जाती औ ऊंचे सुर में कुछ बोलते तो उससे भेंट होजाती औ ऊंचे सुर में कुछ बोलते तो भी प्राण बचना कठिन था इस लिये मैं तुम्हें चुपचाप यहाँ ले आया हूँ। अब तुम्हारी इच्छा हो, कुछ पूछो, बात चीत करो औ जब तुम कहोगे तभी मैं तुम्हें तुमारे साथियों से मिला दूंगा"।

यह सुन मैंने प्रणाम करके अपने प्राणदाता बाबाजी से कहा कि महाराज ! क्यों न हो, तुलसीदासजी ने सच कहा है कि "सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहा न जाना। निज परितोष द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवैं सुसन्त पुनीता"। सो धन्य हैं, आप ही ऐसे महात्माओं के तपोबल से पृथ्वी स्थिर है। इतना कहने के अनन्तर मेरे चित्त में समुद्र की सी तरङ्गें चल पड़ीं, एक बेर तो चित्त में यह आया कि कहीं अब भी तो मेरे पीछे से बाघ नहीं चला आता है ! फिर साथ ही कुछ शोक का सा आविर्भाव हुआ कि देखो, यदि अभी बाबाजी न पहुँचते तो मुझे वह दुष्ट जन्तु खा जाता। औ फिर मेरे सङ्गी कहां खोजते गया में, मेरे डेरेवाले घर जाके क्या कहते ? हाय मेरी युवती रमणी क्या करती ? पर जब तक ऐसा भाव उठे उठे तभी वैराग्य ने हृदय में राज्य किया और अंतः-करण में प्रसन्नता के साथ इस आनन्द के अमृत की वर्षा हुई कि शरीर अनित्य है "अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः" [आज वा सो बरसों बाद, प्राणियों की मृत्यु तो निश्चित ही है।] तब एक दिन तो संसार छूटे ही गा, आज ही मर जाता तो क्या बुरा था। आह ! इस समय मैं विष्णुचरणदर्शन से पवित्र हो रहा हूं, शरीर प्रसन्न है, यदि दिन बीत गया हो तो ऐसे समय मृत्यु होना क्या अच्छी बात है। धिक्कार है उन मरनेवालों को, बरसों खाट में पड़े रह के, रो रो के, दांत निकाल के मरते हैं

और मुझे अब भी बाघ उठा के ले जाय तो आहा ! क्या कहना है; जैसे दिलीप अपना देह देने को सिंह के सामने मांस पिण्ड की भांति बैठ गये, वैसे मैं भी उपस्थित हूं; भला यह मांस किसी के भी तो काम आवे ! आहा—"मृत्युं वरं को न वृणीत आगतम्" । [सुन्दर आई हुई मृत्यु का वरण कौन न करेगा ?]

हाय हाय ! मैं किस माया के बखेड़े में पड़ा हूं, अभी आज यह संसार सपना हो जाता । अच्छा, अब मैं भी यहीं धूनी जमाऊं और इस श्लोक को प्रतिक्षण स्मरण करूं कि—

"अन्तकाले च पुरुषो ह्यागते गतसाध्वसः ।
छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनुये च ताम् ।।'—

[पुरुष को उचित है कि अन्तकाल में निर्भय हो कर, असंग रूपी शस्त्र से देहादिक की स्पृहा को काट दें ।]

इतना मैं विचारता ही था कि समीप ही एक पेड़ की आड़ में, एक भालू भयङ्कर स्वर से बोल उठा । बस इतने ही में मेरा ज्ञान न जाने किधर चला गया औ झट कमर से कटार निकाल मैं खड़ा हो गया औ ललकार उठा कि आ किधर है, अभी तुझको चीर डालता हूं औ तेरे साथी बाघ साप के भी टुकड़े २ कर डालता हूं । मेरी आंखें लाल हो गईं, होठ कांप उठा औ ऐसा चित्त हो गया कि सौ बाघ खड़े हों तो अकेला कूद पड़ूं औ चीर डालूं । भालू तो कुछ बड़ी बात नहीं । हां, युद्ध ठने औ मुझे रूसी सेना पर सरकार छोड़ दे तो मैं सब बैरियों की छाती पर इसी कटार से अपना नाम लिखकर चला जाऊं ।

मेरा यह डौल देख बाबाजी हंसे । तब तो मैं भी ऐसा लज्जित हुआ कि कुछ कहा नहीं जाता । चुपचाप कटार को म्यान में रखकर सिर झुका कर बैठ गया औ अपने ही बहुरूप हृदय पर आप ही पछताने लगा ।

बाबाजी बोले " बेटा ! चिन्ता मत करो । तुम उस राजपुताने

के सिंह बच्चे हो जहां महाराज मानसिंह, महाराज जयसिंह आदि महारथी औ ठाकुर दलेलसिंह जी ऐसे बीरबर हो गये हैं तुम्हें कैसा ही वैराग्य क्यों न हो, पर समय पर वीरता ही प्रगट होगी। ऐसा ही क्षणिक वैराग्य अर्जुन को हुआ था, तब नारायण ने समझाया था।"

इसके अनन्तर, थोड़ी देर तक उन महात्मा ने मुझे और भी कई उपदेश दिये औ अन्त में कहा कि अब तुम्हारे साथी लोग तुम्हारे लिये घबराते होंगे सो अब उनके पास जाओ। मैंने हाथ जोड़ कर कहा कि महाराज ! मेरा सामर्थ्य नहीं कि इस जंगल में मैं उन्हें खोज सकूं। हां, आप अनुग्रह करके पहुँचा दें तो पहुँच सकता हूं। तब बाबा जी ने कहा "बहुत अच्छा, एक क्षण के लिये आँख तो बन्द करो" मैंने स्वीकार कर आँख मींची औ पल भर के अनन्तर ही एक मन्द हल्ला सा सुन पड़ा, सोचने से उसमें से ये बातें कुछ २ समझ पड़ने लगीं "क्या हुआ, अवश्य कोई भूत पीछे पड़ा—नहीं साहब भूत कहाँ ! कोई बाघ भालू होगा वहाँ से उठा ले गया—अजी क्या बकते हो ? रास्ता भूल गया है, चलो खोजें—अच्छा चलो, देखो तो यह ऊंचे टिल्ले पर ध्यान लगाये कौन बैठा है !—कोई महात्मा होगा—चलो इससे तो पूछें"— मैं इतनी बात सुन मन में गमता था कि यह कौन औ क्या बोल रहे हैं, तब तक तो एकाएकी ऐसा जान पड़ा कि किसी ने मेरी बांह पकड़ी। मैंने हड़बड़ा कर ज्यों ही आंख खोली त्यों ही तो देखा क्या कि न वह टिल्ला है, न वहाँ वे बाबाजी हैं औ न वे मेरे आस पास के घास बनस्पति हैं, पर उनके बदले मेरे साथी लोग मुझे घेरे खड़े हैं औ हर्ष में ताने के साथ कह रहे हैं कि "वाह बाबाजी ! भला ध्यान लगाया" मैं भी उनके गले लगा औ फिर उठ कर उनके साथ उस छोटे टिल्ले से उतर चला तो देखा कि पास ही एक बड़े चट्टान के भीतर खोद बनाई हुई बड़ी कोठरी है उसका नाम कर्ण-चौपाड गुफा है, वहां एक बैरागी बाबाजी रहते हैं

औ प्रायः आये हुए यात्री लोग एक दिन उनी की कुटी में निवास करते हैं; तब दूसरे दिन पहाड़ पर चढ़ के कुछ देखते सुनते हैं। क्योंकि बस्ती से वहां आते आते तक एक दिन बीत जाता है। बस वहीं मेरे साथी लोग भी डेरा जमाये थे। मुझे भी वहीं एक चट्टान पर बैठाया और कौतुक से मेरे बिछट जाते का वृत्तान्त पूछने लगे। मैं भी जैसे अब कह गया हूँ वैसे ही उनके सामने कह गया औ फिर उनका भी वहाँ आने का औ मेरे लिये व्याकुल होने का चरित सुन गया। उस समय मेरा चरित सुन मेरे साथी लोग औ कर्ण-चौपाड के बाबाजी भी अत्यन्त ही चकित हुये औ आश्चर्य, हर्ष व्यामोह आदि से पूरित हो अनेक भावना करने लगे। किसी निर्बुद्धि ने कहा कि बस, तुमारे प्राण बचे, वह सिद्ध नहीं था कोई भूत था। दूसरे चालाक ने कहा, नहीं साहब, वह मनुष्य ही था, पर कर्णपिशाची अथवा कोई यक्षिणी सिद्ध थी। तीसरे नवशिक्षित थियोसोफिस्ट ने कहा कि नहीं, हमने सुना है कि रूस से बहुत से योगाभ्यासी लोग आये हैं औ हिन्दुस्तान के स्थान स्थान में व्याप्त हैं उन्हीं में से कोई होगा, चौथे लालाजी ने कहा कि क्या अजब कि हजरत महम्मद के शागिर्दों में से कोई हो, पांचवें धूर्त ने कहा कि अरे! तुम्हें डर लगा होगा, कहां का जटिल औ कहां का सिद्ध!! बस यों ही लोग भांति रकी रङ्गतबाजी करने लगे औ मैं चुप, काठ की मूरत सा बैठ, सब के मुंह की ओर देखने लगा। योंही बड़ी देर तक हम लोगों की गोष्ठी होती रही, फिर वहां के बाबाजी ने हम लोगों को कुछ फल औ कन्द मूल आदि मंगा दिये। हम लोगों ने खाये औ एक चौड़ी चट्टान पर कुछ कम्मल सम्मल बिछा कर लेटे। फिर घंटों तक तो उसी बिछटने की चर्चा होती थी। अनन्तर कहीं भालुओं का लड़ना, कहीं चीतों का बोलना, कहीं इनके शब्द से बहुत चिड़ियाओं का चहचहा उड़ना, कहीं आते हुए हुण्डार के पैरों का चटचटाना, औ कहीं जन्तुओं के पीने से

जल का ढबढबाना, सुनते हुए कुछ सगबगाते, कुछ डरते, कुछ करवट लेते, कुछ चमकते, कुछ बर्राते, मेरे साथी तो सब सो गये, पर मुझे नींद न आई।

इतने में तो नील गम्भीर तलाब पर पौरते हुए हंस की सी, पन्ने की थाली में धरे मक्खन की सी, सघन तमाल में लगे श्वेत फूल के गुच्छे की सी, श्याम मूर्ति पर लगे चन्दन बिन्दु की सी, यमुना में पौरते बलभद्र की सी, नीलाम्बर में काढ़े जरी के बूंटे की सी, हबशियों की फौज में घुसे अङ्गरेज की सी, काले कोट पर लटकते हुए चांदी के तकमें की सी, औ आकाश में उड़ी जाती आर्यों के यश की पोटरी की सी शोभा देता हुआ चन्द्रमा आकाश में देख पड़ा। मैं बड़ी देर तक टकटका कर उसकी ओर देखता रहा। फिर उसकी चांदनी में पहाड़ की विलक्षण शोभा देखता और उन मन्द वायु से धीरे धीरे हिलते पत्तों की सन्नाहट सुनता, मैं भी सो गया।

थोड़ी सी देर तक तो संसार कहां था औ मैं कहां था, इस का पता नहीं, पर अचानक देखता क्या हूं कि आंख के आगे वही बाबाजी खड़े हैं औ मैं उनसे पूछ रहा हूँ कि कहिये! इस पहाड़ में कहां क्या देखने योग्य है? तब बाबाजी ने कहा कि "बेटा! यहां सहस्रों बातें देखने योग्य हैं, क्या क्या कहैं? यहाँ कितनी ही कोठरियां हैं जो पहाड़ के भारी भारी चट्टानों को खोद २ कर बड़े-बड़े गुणियों की बनाई हैं, जिनके देखने से तुम्हें जान पड़ेगा कि सहस्रों वर्ष के पहले भी इस देश में कैसी शिल्पविद्या थी। कहां ये लोहे ऐसे ठनठनाते पत्थर औ कहां उन कोठरियों की ऐसी चिकनी भीत जिनमें मुंह देख लो। जिन पत्थरों की छोटी २ खल पांच पांच सौ रुपयों में बिकती हैं औ वैद्यों के बरसों के रगड़े में भी मासे भर की इधर उधर नहीं होती, उनको बराबर चौकोर चिकनाना क्या साधारण काम है? बेटा! यह साधारण भूमि नहीं है। जब मगध में

जरासन्ध का राज्य था तब इस पहाड़ की शोभा ही निराली थी। जरासन्ध ने इस प्रान्त को एक उद्यान सा बना रक्खा था। इसी पहाड़ की कन्दरा में जरासन्ध ने हजारों राजों को कैद किया था। इसी पहाड़ में जरासन्ध की बेटी अस्ति औ प्राप्ति, सखियों के संग विहार करती फिरती थीं। जब कंस जरासन्ध के यहां अपने ससुरार आते थे तो इसी पहाड़ पर भारी भारी पत्थरों के उठाने की कसरत करते थे। राजा नन्द इसी पहाड़ पर बरसात काटते थे। महाराज चन्द्रगुप्त इसी पहाड़ पर शिकार खेलते थे। चाणक्यजी ने इसी पहाड़ में बहुत सी सेना रक्खी थी औ राक्षस के मेलियों को कैद किया था। भास्कराचार्य औ वाग्भट्ट ने इस की चोटी पर से ग्रह साधे थे। मैं अधिक क्या कहूं, अभी तक इस पहाड़ में असंख्य ऋषि मुनि औ महात्मा लोग तप करते हैं। तुम श्रम करके देखोगे तो आप ही बहुत चमत्कार देख पड़ेंगे। पर अब देर मत करो, उठो।"

बस इतना सुनते ही मैं धड़धड़ा कर उठ बैठा हुआ औ चारों ओर देखने लगा पर अब बाबाजी कहां? वह तो सपना था। मैं चुपचाप उसी चट्टान पर बैठा। बड़ी देर तक तो बाबाजी की कही हुई बातों ही की आवृत्ति करता रहा। फिर अपने साथियों की ओर आंखें करीं तो देखा कि सब निद्रा की मदिरा में मत्त पड़े हैं।

उस समय आकाश के तारे टिम टिम करते अस्त हो चले थे। श्याम आकाश पर प्रकाश का चन्दनचूर सा उड़ चला था। पहाड़ के शृङ्गों ने अन्धकार के कपड़े से (Night dress) अलग उतारे थे। पेड़ों पर चिड़ियों की पाठशाला सी खुलने लगी थी। पूरब की ओर सिन्दूर की आंधी सी उड़ रही थी, जिसे देख चित्त में अनेक भावना होती थी कि ये लाखों लाल कमल खिले हैं, कि रजोगुण का ढेर लगाया गया है, कि सूर्य के रथ की लाल गुम्मज है, कि पूर्व दिशा के ललाट की रोरी है, कि सूर्य की स्तुति करते हुए करोड़ों सिद्धों के गेरुवे कपड़ों की भड़क है, कि मारे हुए अन्धकार

के रुधिर का कीच है, कि करोड़ों ब्रह्मचारियों की फेंकी हुई लाल फूल औ रक्त चन्दन से मिली अर्घाञ्जलि है, कि भूलोक को छोड़-कर भागा, भारतवासी वीर क्षत्रियों का प्रताप है, कि ब्रह्मा से आती हुई जहाजों के बनाती पाल हैं, कि देवताओं की होली की गुलाल है, इत्यादि ।

आहा ! बन्दरों की वह फौज ऐसी ललाई का पूरब से उमड़ना, उन राक्षसों की सेना ऐसे अन्धकार का पश्चिम में छिपना औ उन देवताओं के उछाले पुष्प-समूह ऐसे तारों का टिमटिमाना, मुझे रामलीला का स्मरण कराता था ।

फिर थोड़ी देर उसी शीतल मन्द सुगंध वायु का अनुभव कर, उठ कर, मैंने अपने साथियों को जगाया । वे भी ऊँ औं कर, कर्र, मर्र हो, अंगुली तोड़, बांह मरोड़, देह ऐंठ, लोट पोट कर, जंभाई ले, आंखें मल, कपड़ा सम्हाल, इधर उधर देखते औ आंख मिच-मिचाते उठ बैठे हुए । मैंने कहा, अब चट-पट नित्यक्रिया से निपट लो तो पर्वत-यात्रा का आरम्भ करें, फिर घाम हो जायगा तो कुछ न बनेगा ।

बस, थोड़ी देर में हम सब नित्य-नियम से निपट, कुछ जल-पान कर; झट पहाड़ पर चलने को उद्यत हुए औ एक वहीं वाले बाबाजी के चेले को मार्ग बतलाने के लिये साथ लिया । उस समय सूर्य का लाल चक्र कुछ ऊपर चढ़ चला था, औ पीला पड़ता, सफेदी लेता, तेज फैलाता जाता था । रात भर की ओस से सिकुड़े पत्ते औ फूल सगबगा कर फिर कड़े औ सीधे हो चले थे । मैंने ध्यान लगाकर देखा कि कमलों का तो नाम है, पर सभी फूल सूर्य की घाम से खिलते हैं और सूर्य के न रहने पर मुंद जाते हैं । मैंने यह भी सोचा कि प्रायः फूलों का पूरा पूरा खिल जाना मध्याह्न में होता है औ पूरा कस के मुंद जाना मध्यरात्रि को औ बीच के समय में उसी क्रम से फूलों की पत्तियां अपनी आकुञ्चनविकाश की गति में रहती हैं, तो यदि कोई बुद्धिमान् अपनी पूरी बुद्धि इस में लगावे

तो फूल की भी घड़ी बन सके। एक बेर तो मैंने समझा कि यह नई बात निकाली पर फिर मैंने बिचारा कि यह क्या, संसार में कौन ऐसा पदार्थ है, जिस पर काल की गति का फल नहीं है औ जो काल का सूचक नहीं ! शरीर, पेड़ आदि सब काल पाकर जीर्ण हो जाते हैं, पर वह जीर्णता कुछ एक ही दिन में नहीं आती है। हां, प्रतिक्षण में कुछ न कुछ भेद पड़ता रहता है। हम लोगों की ऐसी सूक्ष्म आँखैं नहीं हैं कि देखते ही जान जायं कि इस क्षण में कितना भेद पड़ा औ फिर कभी उस भेद को देख कर समझ जायं कि अब कितना क्षण बीता।

बस, यों बिचारता हुआ, लोगों के साथ चला जाता था, पर मन में इसी गुनावन में था कि स्मरण हुआ, आहा ! योगी लोग अपने योग बल से इन्हीं सामर्थ्यों को बढ़ा लेते हैं कि उन्हें काल-ज्ञान हो जाता है और ये बाहरी पदार्थ क्या, अपने ही शरीर में देखैं तो श्वास औ प्रश्वास, आंखों की ज्योति, रुधिर का भ्रमण, शरीर का सामर्थ्य औ चित्त की स्थिरता, सब क्षण एक रङ्ग नहीं रहती। यदि आहार व्यवहार नियत करैं तो सूर्य की गति के अनुसार इनमें हेर फेर होगा। बस, योगी इन्हीं कारणों से आंख मीच अपने ही चित्त औ शरीर से सब कुछ जान लेते हैं। उनकी घड़ी वहीं उनके पास ही है।

इतने में मेरे कान में शब्द पड़ा कि "बस, अब सम्हाल के पहाड़ पर चढ़ते जाओ"। मैं उधर फिरा तो देखा कि हम लोग घूम कर पहाड़ की जड़ में आ गये हैं, औ जिस चेला बाबा को मार्ग दिखलाने को सङ्ग लिया था, वही लोगों से कह रहा है कि अब सावधान होकर चढ़ो। वहां से सिर उठा कर मैंने पहाड़ की चोटी की ओर ताका तो अपूर्व शोभा देख पड़ी कि जैसे पहाड़ आकाश को चूम रहा हो। वह तो अपनी समझ में पहाड़ पर चढ़ने के मार्ग पर हम लोगों को लाया था, पर देखा तो वह मार्ग क्या था, पुरसा पुरसा ऊंचे ढोके थे। कहीं बैठ के, दो

पत्थरों के बीच से निकल जाना, कहीं हाथ से पेड़ की डाल पकड़, भूल के चढ़ना, कहीं आधे आधे पांव से गढ़ा में पांव दे चढ़ना, कहीं दरारदार पत्थर में एक से दूसरे पर कूद के जाना था।

आगे पीछे एक से अधिक की गति न थी। दोनों ओर घास फूस, पेड़ कांटे, गहगहाये थे। अच्छा, हम लोगों ने भी अपनी २ कटि कस ली, फिसलने के डर से जूते उतार दूर किये और "जय श्रीकृष्ण" कर चढ़ने लगे।

वह पहाड़ी बाबाजी के चेला तो, बन्दर की तरह झट झट चढ़ चले, पर हम लोग गिरने के डर से धीरे धीरे चढ़ते जाते थे औ इधर उधर देखते भी जाते थे। इतने में टेढ़े मेढ़े होते, घूमते, हांफते सुस्ताते एक चढ़ाव पूरा किया। वहाँ थोड़ी दूर तक कुछ बराबर सी भूमि थी। हरे हरे पेड़, घेर बांध, डाल फैलाये थे। हवा चलने से उनकी डालें हिलती जाती थीं। ऐसा जान पड़ता था कि हम लोगों को चढ़ाव से थके औ पसीनों में झाव भीब देख, पेड़ अपने पास बुला रहे हैं।

हम लोग थाक मिटाने के लिये थोड़ी देर तक उन्हीं पेड़ों के नीचे बैठ गये औ फिर के पृथ्वी की ओर ताके तो एक विचित्र शोभा देख पड़ने लगी। कहीं ऊंचे ऊंचे तालों के झमाट, कहीं पीपल बड़ आदि, कहीं और और सैकड़ों जङ्गली पेड़, कहीं पत्थरों के ऊँचे चट्टानों के टिल्ले और कहीं झरनों से झरझराता निर्मल जल; ये सब अपनी आंखों के सामने एक चित्र की भांति फैले थे। भांति २ के पत्ती आनन्द से कुहूक मारते हुए, एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाते थे। ऊपर से देखने में इस की अपूर्व शोभा देख पड़ती थी। बस क्या कहूँ।

सब लोग बैठे हवा खा रहे थे औ शोभा देख रहे थे, इतने में मुझ से न रहा गया। मैं उठ कर इधर उधर टहलने लगा औ शोभा देखने लगा। उन सपेद छींटे वाले काले पत्थरों को औ

पत्थरों को लपेटती हरी लताओं को देखता ज्यों आगे बढ़ा कि एका-एकी मेरे कान में शब्द पड़ा "ओः की शर्वनाश" ! मैं कलकत्ते में रहने के कारण बङ्गभाषा समझता था, इसलिये समझ गया कि यह कोई घबराया बङ्गाली है। पर कहीं कोई पुरुष न देख पड़ा। मैं उसके खोजने के यत्न में चुप मार, सटक के खड़ा हो गया। इतने में फिर सुना कि "आः एखन कि करी, कोथाय जाई"। [अरे ! अब क्या करूँ ? कहां जाऊँ ?] मैं इसी ध्वनि के अनुसार घूमा औ एक छोटे से शिखर के बगल में एक पेड़ की छाया में एक चट्टान पर देखा कि एक बङ्गाली बाबू शोकमुद्रा से बैठे हैं।

मैं जो अचानक उन बङ्गाली बाबू के सामने आ गया सो एक बेर तो वे मुझे देख चौंक उठे, फिर स्थिर होके मेरी ओर देखने लगे। मैंने उन्हें देखा तो विचित्र ही झांकी हुई। उस समय उनका सांस फूल रहा था, आंखें चपल हो रही थीं, मुंह पर पसीने झमझमा रहे थे, छाती लपलप करती थी औ मुंह लाल हो रहा था। मैंने उन से पूछा "बाबू ! आप घबराये से क्यों देख पड़ते हैं !" तब बङ्गाली मशा थोड़ी सी देर ठमक कर बोले, "अम क्या बोलेगा हमारा शर्वनाश हो गया" [मैं क्या कहूँ, मेरा तो सर्वनाश हो गया] मैंने समझा कि क्या सर्वनाश हुआ ! क्या किसी ने ठोक मार के कुछ बकुचा सकुचा तो न छीन लिया! फिर मेरे पूछने पर उन ने बंगला हिन्दी और अंगरेजी की खिचड़ी भाषा में अपना चरित कह सुनाया। जिस का निचोड़ यह था कि उनके साथी लोग बिछुड़ गये थे, सो सब को इधर उधर ढूँढ़ ढाँढ़ कर थके हुए, छके से सिसक रहे थे। मैंने उन से कहा कि आप डरिये मत, हम लोग हैं न ! आप को पहाड़ पर से कुशल पूर्वक उतार ले चलेंगे और आप को रास्ते लगा देंगे। वह बिचारे गद्‌गद् हो गये और खड़े हो मुझ से पूछने लगे कि "आप एखाने कहाँ से आइ गीया"। [आप यहाँ कहाँ से आ गये ?] मैंने कहा कि "मैं भी यात्री हूं। कई साथियों के साथ यहाँ आया हूं। उधर और

लोग बैठे हैं। मैं इधर टहल रहा था। इतने में आप की कुछ कुछ आहट लगी सो इधर ही चला आया, अब आइये चलैं, साथियों से मिलैं"।

बङ्गाली माशा मेरे पीछे पीछे चले। मैं भी वैसे ही शोभा देखता बाबू माशा से बात करते फिरा। चलते चलते देर हो गई, पर साथी लोग न देख पड़े। तब अचानक मेरी आँखें चकरा गई। मैं खड़ा होकर देखने लगा कि कहाँ आये, कितनी दूर आये और व लोग कहाँ हैं, पर उन पत्थरों के ढोकों में कुछ संकेत न मिला। तब मैंने खड़े होकर कुछ देर विचारा तो स्मरण हुआ कि चढ़ के आते ही एक पीपल का पेड़ देखा था और दो तीन साथी उसके नीचे बैठे ठण्ढे होते थे। मैं इधर उधर दौड़ भाज कर उस पीपल को देखने का उद्योग करने लगा तो देखा कि उस पीपल को छोड़ आगे तक आ गया हूँ औ उस पीपल के नीचे, आस पास कोई साथी नहीं है। मैं तो एक ऊँचे ढोके पर खड़ा हो, चुपचाप एकटक साथियों को ढूँढ़ने की दृष्टि इधर उधर फेंकने लगा, इधर बङ्गाली महाशय मुझे उदास देख, मुझ से भी अधिक घबराने लगे औ पूछने लगे कि "की की हइछे आपनी व्यस्त केनो" [क्या ? क्या हुआ है ? आप घबराये क्यों हैं]। मैंने बङ्गला ही में उन्हें समझा दिया कि 'मेरे साथी यहाँ ही थे सो न मालूम क्या हुए !' बङ्गाली बाबू लम्बा साँस लेकर बोले "ओः शर्वनाश"। मैंने कई साथियों का नाम ले लेकर पुकारा पर कोई वहाँ हो तब तो बोले ! थोड़ी देर चिन्ता में पड़ मैंने विचार लिया कि अब चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे मेरे खोजने ही को इधर उधर कहीं गये होंगे पर हम इस 'देखतभूली' पहाड़ में आप भी बहक गये होंगे।

मैंने थोड़ी देर तक वहाँ ही ठहर, उन लोगों की प्रतीक्षा की। जब उनके आने का कोई चिह्न न देखा तब बङ्गाली बाबू से कहा कि बाबू ! चलिये, हम लोग पहाड़ की कुछ सैर कर उतरैं। बङ्गाली

बाबू ने कहा "ओरे बाबा बड़ा सैर हुआ अब सैर करने सक्ता नहीं, अब नीचे चोलो" [अरे बाबा ! बड़ी सैर हुई ! अब सैर नहीं कर सकता अब नीचे चलो]। मैंने कितना कहा, पर वे न माने, हार कर मैंने उस पहाड़ से उतरने का उद्योग किया। जिस घाटी से चढ़े थे, उसी से उतरने लगे।

तब तो पहाड़ पर चढ़ना था सो पेड़ों की शाखा आदि पकड़ते लटकते चढ़ आये थे, पर अब उतरना पड़ा। यह काम बहुत ही कठिन था। वह चिकने चिकने चट्टान, वह पत्थरों की सन्धियों में मोटी दरदरी बालू ऐसी मट्टी, वह बीच बीच में पुरसे भर की कुदान, औ वह जिधर झुकाव उधर ही उतरना, हम लोगों के चित्त को और भी भय देता था।

तब मैंने बङ्गाली बाबू से कहा कि आप घबराइये मत। अब हम लोगों के सिर पड़ी सो तो भुगतनी ही पड़ेगी। अब एक काम कीजिये, डुपट्टे से कटि कस लीजिये औ बाँह चढ़ा, मेरे सङ्ग होइये। आपको आगे जाने में डर हो तो ठहरिये, मैं आगे चलता हूँ, आप पीछे ही पीछे सही। महाशय ने वैसे ही जब घड़ी आदि बखेड़ा जेब में रख, ऊपर से डुपट्टे का लपेटा दे लिया औ बाँह चढ़ा ली, तब मैंने उनके मुँह की ओर देखा तो जान पड़ा कि ये ऊपर तो मेरे कहने सुनने से कुछ डौल डाल बना रहे हैं, पर भीतर इनका जी ही जानता है।

उतरने के समय मैंने एक ऊँचे चट्टान से नीचे की ओर देखा तो विचित्र ही ढङ्ग देख पड़ा। वह पहाड़ ऊपर से नीचे तक मारे बनस्पतियों के ऐसा हरा हो रहा था कि मानो पहाड़ नहीं है, केवल बनस्पतियों ही का ढेर है। अहा! उस समय उसके समीप के बड़े बड़े पीपल आदि के पेड़ भी ऐसे देख पड़ते थे जैसे पहाड़ ने खेलने के लिये छोटे छोटे हरे गेंद बनवा के रक्खे हों। आहा! उस समय कहीं किसी पेड़ की डाल पर बैठ, बन्दर का हुमचना और उस झलन्त से उस पेड़ के फल फूल और पत्तों का बरस

पड़ना, कहीं फूलों के गुच्छा पर उड़ते उड़ते सुग्गों का बैठना औ उनके पैर छुवाते ही गुच्छे के झूम कर घूम जाने से उन सुग्गों का अधसमेटी पाँखों को फिर भी फरफरा कर उड़ जाना, कहीं किसी झमाट से छोटे छोटे चञ्चल खरहों का कान हिलाते सरसरा कर निकलना औ फिर अचानक अपने रङ्ग को काली पीली रेखा सी बनाते हुए, झट झपट कर, दूसरे झमाट में जा घुसना, कहीं मोती की सी वर्षा करते हुए झरनों का ऊँचे से पत्थरों पर झरझराकर गिरना, कहीं उनी जलधारों में मुँह लगा, छोटे छोटे सुन्दर हरिन के बच्चों का कान औ पूँछ ठटका, सिर झुका, जल पीना, किस के चित्त को नहीं मोहित करता था ! छोटी छोटी लताओं के कोमल फूलों पर भौंरें गूँजते हुए बैठते थे, पर जिधर से वे आकर बैठने चाहें उधर ही से फूल घूम जाते थे औ उसके सब पत्ते हिल उठते थे, सो जान पड़ता था, भौंरे इस के मुख कमल का चुम्बन करना चाहते हैं तो यह मुँह फेर कर हिलाती है। वायु, लता पेड़ों को कँपाता, पत्थरों के ठक्कर खाता, पक्षियों को चञ्चल करता, कहीं तीव्र कहीं मन्द, ऐसा जान पड़ता था कि मानो पहले तो यह लम्पट वायु छोटे छोटे फूलों को उछालता, सुगन्ध से सुगन्धित हो, मकरन्द के कणों से भींगा, मदान्ध मधुपों से केलि करता, झूमता, ऐंठता, मड़राता, तरुवरों की बधूसदृश लताओं में धक्का धुक्की करने लगा, पर जब यह दुराचार देख लता पैर से सिर तक कांप उठी, पेड़ भी बड़ी बड़ी डालें भुजा की भांत झुमा कर, फल फेंक फेंक कर मारने लगे, पक्षियों ने भी मार २ धर २ का सा बड़ा कोलाहल मचाया औ पंखों का चपत जमाना आरम्भ किया, तब विचारा लज्जित वायु भागा, पर जिधर चला उधर ये ही हल्ले देखे तो उसने बिचारा कि किसी तालाब में डूब मरूं, पर उधर देखा कि यह भी मुझे देखते ही, तरङ्ग भङ्ग से अङ्ग प्रत्यङ्ग को झुमा, दूसरा ही रङ्ग दिखाने लगा, उनके कमल औ पक्षियों ने भी धूम मचाई तब पहाड़ की ओर दौड़ा

सो चट्टानों की ठोकर खाता, गिरता पड़ता चढ़ चला, उसीसे कभी डर के झोंक से औ कभी लंगड़ा कर धीरे से चलता है।

मैं यों उस शोभा में डूब ही गया था कि ओः, कहीं किसी ने घिघिया कर मुझे पकड़ लिया। मैंने अचानचक चकपका कर अपनी दृष्टि उधर फेरी तो देखा कि यह कृपा उन्हीं "शर्वनाश" वाले महाशय ने की थी। मैंने पूछा "क्या बाबू ! क्या हुआ, कुछ कहिये तो ?" उन ने कहा "आर किबोलबो"। अब और क्या कहूँ ? मैंने कहा "कुछ तो भला कहिये" तो उन ने जो कुछ गोल अक्षरों में कहा, उस से यही निकला कि इस पेड़ के नीचे से क्या जाने क्या निकला कि उस पेड़ के नीचे चला गया। फिर मैंने उन्हें बहुत समझा बुझा कर ठिकाने किया औ कहा कि देखिये, अब जी कड़ा कीजिये, अब नीचे उतरते हैं। अब भी घबराइयेगा तो पैर फिसलते ही गड गड गड गड धम हो जाइयेगा।

फिर मैं बायें हाथ से उन का हाथ पकड़ धीरे धीरे उतरने लगा। उतरने के समय कितने कितने उपद्रव भये सो कहाँ तक कहूं। अन्ततः जब हम लोग लगभग आधा पहाड़ उतर आये तब जहाँ धीरे धीरे उतर रहे थे, वहाँ से आगे पासही एक गुफा ऐसा बड़ा भारी गढ़ा था औ उस के मुंह पर लता जाल ऐसा छा रहा था कि उस का आकार सब ढप रहा था। यदि मैं उस सुध से आता तो मैं ही उस में गिर पड़ता पर दैवात् मैं कुछ दहनी ओर झुका उतर रहा था, पर बाबू साहब मेरा बांया हाथ पकड़े ठीक उसी सुध में चले आते थे। बस ज्यों हीं हम लोग वहाँ पहुँचे कि मैंने अचानचक यही देखा कि एकाएकी चिल्ला कर औ घिघिया कर बाबू ने मेरा पांव पकड़ लिया और साथ ही जब तक मैं सम्हलूं २, तब तक मेरे भी, उन के गिरने का ऐसा झोंक लगा कि उन के साथ ही मैं भी उस गढ़े में गड़गप्प हो गया।

अब यह वृतान्त मैं स्पष्ट नहीं कह सक्ता कि हम लोग कितनी दूर तक नीचे गिरते चले गये, केवल इतना अवश्य कह सक्ता हूं

कि उस अन्धकार में हम लोग जिधर ही शरण लेते थे, उधर ही एक ओर गढ़ा ऐसा पाते थे कि उस में फिर लत्थ पत्थ हो ढलक चलते थे, ऐसे ही क्या जाने कै बेर गड़ गड़ गड़ गड़ धम्म हुआ। अन्त में एक प्रशस्त सी भूमि में हम लोग जा पड़े औ थोड़ी देर तक ज्यों के त्यों शिथिल, अचेतन से पड़े रहे।

फिर थोड़ी देर में मेरी आंख खुली तो मैंने देखा कि चारों ओर अन्धकार ऐसा गाढ़ा छा रहा है, मानो किसी ने अबीर की भांति काजल उड़ाया हो। हम लोगों के अङ्ग भी उस अन्धकार ने ऐसे लीप से दिये थे कि आपस में देखना तो जहां तहां, अपना अङ्ग भी देख पड़ना बहुत कठिन था। मैं उठ के बैठ गया। कई बेर अपनी आंखें मलीं औ आंख फाड़ फाड़ कर इधर उधर देखने लगा, पर जब प्रकाश की कुछ भी सहायता न मिले तो आंखें बिचारी क्या करें। मैंने ऊपर नीचे औ चारों ओर बड़ी सावधानता से देखा पर अणुमात्र भी कहीं कुछ न देख पड़ा। मैंने मनही मन कहा कि वाह "जित निरखत तित स्याममई है।"

थोड़ी देर के अनन्तर मैंने बाबू को टटोलना आरम्भ किया तो देखा कि एक ओर वे भी लम्बे पड़े हैं। मैंने उन्हें झकझोर कर कई बेर पुकारा कि "बंगाली बाबू! बंगाली बाबू! उठिये" पर वे क्या उठें, वे तो मूर्छित पड़े थे! तब मैंने हाथ ही से टटोल कर उन की नाक दबाई औ उस समय कुछ मुझ को भी दुःख हुआ कि यह बिचारा कहीं मर न जाय, और इस बात की कुछ घबराहट भी हुई कि अब इसे कैसे बचाऊँ। इतने में मुझे फिर उन्हीं बाबा-जी का स्मरण हुआ। स्मरण होने के साथ ऐसा अनुभव हुआ कि मानों बाबाजी मेरी आंख के सामने ही खड़े हैं औ अभय मुद्रा से यों कह रहे हैं:—

"सर्वतेजस्सु लीनेष्वप्यात्मतेजः परं स्मृतम्।
धृत्वा धैर्यं नरो गच्छेत् तन्निर्दिष्टेन वर्त्मना"॥

[सब तरह के तेजों के नष्ट हो जाने पर भी आत्मतेज को सबसे बड़ा कहा गया है। अतः मनुष्य को धैर्य धारण कर, उसी के बतलाये रास्ते से चलना चाहिए।]

जब तक मैं इसका अर्थ समझूं समझूं, तब तक बाबाजी अन्तर्ध्यान हो गये। मैं चकित सा हो थोड़ी देर योंही ठहरा रहा, फिर समझा कि बाबा जी महाराज योगी हैं, अपने योगबल से मुझे यहाँ भी दर्शन दे गये हैं औ मैं क्यों घबराता हूँ, मुझे सभी कुछ तो कह भी गये। इस श्लोक का मेरे लिये यही तो तात्पर्य है कि "यहां और कोई बाहरी नहीं प्रकाश है तो क्या हुआ, आत्मा का तो प्रकाश है। बस इस से बढ़ के और कौन सा प्रकाश चाहते हो, अब धैर्य को धारण करो औ जो आत्मा कहै उसी के अनुसार चलो।" 'इतने में बंगाली बाबू भी कलबलाये। तब मैंने धीरे धीरे उनका प्राणायाम छोड़ा और अपने डुपट्टे से कुछ झपट्टे दिये। तब सुना कि बाबू ने कुछ मन्द मन्द कहरना आरम्भ किया। फिर बड़ी देर तक मैंने उनको समझाया जिसका वर्णन मैं अब कहां तक करूँगा। मेरे समझाने से उने धीरज तो क्या आना था पर हां, तो भी कुछ ठिकाने आये। फिर मैंने उन से कहा कि बैठे बैठे कुछ नहीं होना है। अब कुछ चलना फिरना चाहिये। फिर मैंने अपने डुपट्टे का एक कोना उन्हें थंम्हा दिया, एक मैंने स्वयं अपनी कटि में खोंस लिया औ धीरे २ हाथ से टटोल टटोल, जिधर से अवकाश पाया उधर चला। उस समय कभी सिर में किसी लटकते हुए पत्थर की ठोकर लगती थी औ कभी पांव सन्धे में पड़ जाता था, कभी मुंह में मकड़ी के जाले लग जाते थे, कभी हाथ में लत्ती पत्ती फँस जाती थी औ क्षण क्षण में यही आशङ्का होती थी कि अब किसी सांप ने डसा कि अब विच्छू ने डङ्क मारा। उस समय मेरे साथी को वेदान्तियों की भांति सब कुछ दुःखमय देख पड़ता था औ मुझ को भी परम भक्त की भांति सब कृष्णमय देख

पड़ता था। योंही हम लोग उस बिल के सदृश कन्दरा ही कन्दरा, लगढग पाव कोस के चले गये। उस अन्धेरे में पूरब पच्छिम जानना तो अत्यन्त कठिन था पर मेरा यही अनुभव था कि हम लोग दक्षिण औ पश्चिम के कोने की ओर चले जाते थे। हम लोगों के ऊंचे से गिरने के कारण कुछ कुछ कटि में धमक आ गई थी औ गोड़े औ कुहनी कुछ कुछ छिल भी गये थे। इस लिये इतनी ही दूर चलने पर बैठने की इच्छा भई, तब हम दोनों एक ठिकाने बैठ गये। वहां हम लोग अपने शरीर को भी नहीं देख सकते थे तो और उस कन्दरा का क्या बर्णन करैं। हमारे मित्र अजगर भालू आदि का स्मरण कर कर, काँपते औ हदसते जाते थे पर मैं उन से बार बार यही कहता था कि नारायण का स्मरण कीजिये। इस समय मनुष्य का क्या बस चलता है, वे ही परमात्मा हम लोगों की रक्षा करैंगे, औ यहाँ मृत्यु ही होना है तो क्या चिन्ता है? नारायण का स्मरण करते मरना क्या सब के भाग्य में होता है? यदि ऐसे समय हम लोग मर जांय तो भी हम लोगों के ऐसा भाग्यवान् और कोई नहीं।

यों हम लोग वहाँ बैठे ही हैं कि देखा तो कन्दरा के एक कोने की ओर एक सूक्ष्म छेद में से कुछ प्रकाश निकला। देखते ही मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह नीचे से प्रकाश कहां से औ कैसे आया! मैं विचारने लगा कि यह कोई मणि की प्रभा है कि कोई जड़ी इस अन्धेरे में लगी है और चमक रही है कि कोई भयङ्कर सर्पादि अपने मुंह से ज्वाला छोड़ रहा है कि कोई जुगनूं से भी चमकदार तितली बैठी है? तब तक देखा कि वह किरण इधर से उधर घूमी औ उस ओर कुछ धमधमाहट भी जान पड़ी, जिस से विदित हुआ कि कोई प्रकाशमान पदार्थ चला है। मेरे साथी तो कुछ डरे, पर मैंने उन्हें रोका औ चुपचाप उस छेद के समीप आया तो कुछ पगाहट सी सुन पड़ी औ समीप समीप और कई एक छेदों से कुछ २ प्रभा निकलने लगी। यह देख मुझे

बड़ा ही आश्चर्य हुआ औ निश्चय किया कि उस ओर अवश्य एक भारी कन्दरा है औ बीच में यह ढोकों की एक भींत सी बन गई है। उधर कोई यक्ष गन्धर्व भूत प्रेत जो कुछ हो, उसी की यह प्रभा है। तब तक मेरे कान में एक मनुष्य का सा शब्द पड़ा। मैंने और कान लगाया तो विचित्र उच्चारण से जान पड़ा कि अङ्गरेज बोलता है। फिर चुपके से और एकाग्र हो सुना तो जान पड़ा कि संस्कृत भाषा में एक अङ्गरेज कुछ पढ़ रहा है। तब मैंने देखने के अभिप्राय से अंगुली से एक छेद की मट्टी खरखरा कर कुछ बड़ा करना आरम्भ किया। तब तक उस प्रकाश में कुछ कुछ देख पड़ता था। इसलिये मेरा साथी मुझे कुछ खसर फसर करता देख, बलात् रोकने लगा। पर मेरे डाँटने पर चुप रह गया। मैंने चार अंगुल का मोखा कर, उस में आँख लगा कर देखा तो सचमुच उधर एक अङ्गरेज खड़ा देख पड़ा। मैं तो चकित हो गया कि वाह! भारतवर्ष के पहाड़ों के तल तक भी अङ्गरेज पहुँच गये।

कोटि कोटि आश्चर्यों का अनुभव करता मैं देख रहा था तो देखा कि उस के हाथ में एक छोटी सी बड़ी चमचमाती लालटेन है। -- की प्रभा चारों ओर छटक रही है और साहब ने उस लालटेन को ऊँची कर एक ओर एक चट्टान पर प्रभा फैला रक्खी है औ उस में कुछ लिखा है, उसे बांच रहा है। उसने दो दो अक्षर करके धीरे धीरे एक श्लोक बांचा। वह मुझे अभी तक कण्ठ है। वह यह है कि—

मगधेश्वरवीरेण जरासन्धेन भूभृता।
निबद्धाः शतशो भूपा महाध्वान्तेऽत्र कन्दरे॥

[मगध के वीर राजा जरासंध ने इस बड़ी कंदरा में सैकड़ों राजाओं को कैद किया।]

साहब ने तो यह बांचते ही झट लालटेन एक पत्थर पर रख, कक्षापुस्तिका (Pocket Book) निकाल, इस श्लोक को झटपट

लिखना आरम्भ किया। तब मैंने समझा कि हम लोग चुपचाप इस कन्दरा ही में बैठे रहेंगे तब तो सड़ा करेंगे, पर यदि साहब के साथ ही लगे तो एक प्रकार के रस्ते लगैंगे। तब तक मेरे साथी ने फिर डर के मेरा हाथ खींच, बल से कहा कि "कि तुमि भूतेर जाले पड़िया छ" [क्या तुम भूत के फेर में पड़ गये हो ?] मैंने कहा "नहीं नहीं, भूत नहीं है, भाग्योदय से यहां भी यह साथ मिलता है"।

दैवात् हम लोगों का शब्द साहब के कान तक गया सो साहब झट घूम कर लालटेन ले देखने लगे कि यह किस ने, कहाँ से, क्या कहा ? थोड़ी देर में उस मोखे की ओर उजाला कर बोले "कौन बोलटा हाई" ? इधर मारे डर के मेरे साथी जी कहने लगे "हाम नाई हाम नाई" [हम नहीं, हम नहीं] पर मैंने कहा "साहब! हम आदमी हैं" तब साहब ने कहा "आदमी ? वेल, किडर से ?" तब मैंने कहा "ठहरिये, मैं सब कुछ कहूंगा" यों कह मैंने एक लात उस भीत पर ऐसी दी कि खरखरा कर कई ढोके गिर पड़े औ आने जाने को खिड़की सा अवकाश हो गया। तब अचानक चमचमाती किरनैं इस कन्दरा में आ गई औ लम्बी चौड़ी साहब की मूर्त्ति सामने खड़ी देख पड़ी। अचानक यह देखते ही मेरे साथी के तो प्राण उड़ गये औ "ओः ओः, अरे बाप ! शर्वनाश" का हल्ला मचा, घबराने लगे। तब मैंने औ साहब ने समझा बुझा ठण्ढा किया तो ठिकाने आये। फिर हम दोनों उसी मोखे से साहब वाली बड़ी कन्दरा में चले गये। तब साहब ने स्थिर दृष्टि से हम लोगों को देखा औ हम लोगों ने साहब को देखा कि उनकी लम्बी उजली दाढ़ी फरफरा रही है, उजला कुरता औ पायजामा पहरे हैं, आंख पर उपनेत्र (चश्मा) लग रहा है, औ कई खलीतों में कितने ही कागद आदि के पुलिन्दे अधनिकले रक्खे हैं। मेरी समझ में साहब लगभग पैंसठ बरस के होंगे पर उनका ऊँचा शरीर, दृढ़ अंग औ अंग की स्फूर्ति ऐसी थी कि बाल

छोड़ सर्वाङ्ग में यौवन झलकता था। साहब के एक हाथ में वह छोटी लालटेन औ दूसरे में एक काला डंडा था।

साहब ने हम लोगों का चरित्र पूछा सो मैंने क्रम से कह सुनाया। तब मैंने साहब का वृत्तान्त पूछा औ उन ने ज्यों कुछ कहना आरम्भ किया त्यों एक भालू की भयङ्कर गरज सुन पड़ी। उस लालटेन की चमक से उस विशाल कन्दरा में दिन सा हो रहा था, सो ज्यों हम लोगों ने आंखैं उठाईं त्यों देखा कि थोड़ी दूर आगे दहने हाथ की ओर एक बड़ी मांद है औ उसी में से निकल कर एक बड़ा भारी भालू मुँह बाये हम लोगों की ओर आ रहा है। तब तो घिघिया कर बंगाली बाबू ने मेरा हाथ पकड़ा। पर मैंने ऐसे बल से झड़कारा कि वे पृथ्वी में लम्बे हो मूर्छित हो गये औ जब तक मैं कोई पत्थर उठाऊं औ साहब डण्डा उठावें तब तक तो भालू अपने कठोर शब्द से कान फाड़ता आ ही पहुँचा।

आः! उस भालू का शब्द अब भी मेरे कान में गूँज सा रहा है औ उसकी लम्बी मुंहफाड़ चमचमाती भयङ्कर आंखें औ विकराल झपट अब भी मेरी आँखों के सामने ही सी देख पड़ती है। कुछ कह नहीं सकता। वह भालू न जानें कितने दिन से भूखा कटकटा रहा था औ जहां तक मैं समझता हूँ, मनुष्य का लहू तो उसने दैवात् ही चखा होगा। या तो मेरी भांति गिरता पड़ता कोई जानवर ही उसके लिये दाल भात का कौर हो सके अथवा वही बड़े उद्योग से खोज के कहीं से पावे तो मनुष्य के कोमल अंग को गुलाबजामुन बनावै। भला, जो कुछ हो, उस की ललक देख कर तो हम दोनों ही की अक्की बक्की सी लग गई औ झट साहब भी कह उठे कि 'ओ माई गाड' औ मेरे भी मुँह से "परमेश्वर परमेश्वर" यह ध्वनि निकली। इतने ही में हम लोगों के पीछे एक और बड़ी गरज हुई औ हम लोगों के सिर में वायु औ पोंछ का झटका सा देता हुआ, एक भयङ्कर सिंह कूद कर भालू के

मुँह के पास गिरा। इधर मेरी पगड़ी गिरी। उधर साहब की टोपी गिरी। हम दोनों झझक कर गिरते पड़ते से भीतों की ओर झुक गये। तब तक भालू उस भयङ्कर जन्तु को अपने ऊपर आता देख उलटा भागा औ सिंह भी गरजता झपटता, उसे भगाता हुआ उसी के पीछे पीछे बायें हाथ के मोड़ से, एक तीसरी कन्दरा में घुस गया। वह, उन दोनों के भागने की खड़बड़ाहट औ कुछ कुछ गरज के, देर तक आने से, बहुत लम्बी चौड़ी जान पड़ती थी।

उन मृत्यु स्वरूप जन्तुओं के निकल जाने पर, थोड़ी देर में हम लोगों की धकधकाहट मिटी। फिर मैंने भी अपनी पगड़ी उठा सिर पर लपेटी औ साहब ने भी अपनी टोपी पहरी। हम दोनों ने फिर परमात्मा का स्मरण किया कि उन्हीं के स्मरण का यह फल था कि प्राण बचे ! फिर क्षणमात्र के अनन्तर साहब ने मुझ से अपनी टेढ़ी मेढ़ी बोली से पूछा कि "भला, यदि यह सिंह हम लोगों का अवितर्कित सहायक न होता तो तुम क्या करते" ? मैंने कहा, करता क्या ? पहले से तो कुछ विचार ही नहीं रक्खा था कि भालू आवेगा। हां, पत्थर हाथ में उठा ही चुका था। पहले पत्थर से मारता, फिर दांव लगाता तो उसकी पीठ पर जा डंडकसा कस देता। आप से कहता कि इस को अन्धा कर दीजिये अथवा ईश्वर जानै क्या होता, पर विशेष सम्भव था कि सिंह मारा जाता। साहब ने कहा कि आप वीर हैं, इस में कुछ सन्देह नहीं। तब मैंने पूछा कि आप इस छोटे डण्डे को उठाते थे। आप क्या करते ? साहब ने हंस कर वह डंडा दिखलाया औ कहा कि देखिये, इस डण्डे में गोलियां भरी हैं औ इधर यह कील है। इस को अँगूठे से दबा कर डण्डा झटकारने से एक गोली निकल पड़ती है और उस गोली में ऐसी ऐसी औषधियां पड़ी हैं औ लिपी हैं कि कोई जन्तु क्यों न हो, उस के रोम से सम्बन्ध होते ही बिजली उत्पन्न होती है औ धड़ाके से वह गोली फूट जाती है। गोली के जितने टुकड़े होते हैं, वे तीन तीन कोने

के; औ बिजली के आकर्षण से उसी जन्तु के शरीर में घुस जाते हैं। उन टुकड़ों में भी ऐसा विष लगा है कि एक मिनट के भीतर ही वह जन्तु मर जाता है।

यह सुन, मुझे यूरोपीय की बुद्धि और चतुराई पर आश्चर्य हुआ औ फिर समझा कि संसार में क्या आश्चर्य है। जब तक जो न समझे वही आश्चर्य और जब जो समझ ले उस समय वही सरल।

वहां से हम लोग कुछ दक्खिन की ओर दबते हुए आगे बढ़े तो देखा कि एक बड़ा मैदान है। उस पर कुछ उजला सा भी था। उधर से एक उत्कट दुर्गन्ध सी आ रही है। उसी समय साहब ने लालटेम भूमि में रख, जेब से दूरवीक्षण दूर्बीन निकाल, आंखों पर लगा, बड़ी देर तक देखा औ हम लोग से कहा कि "इसी ओर गयासुर को पछाड़ के, ऊपर पहाड़ रख, नारायण ने अपने पांव से दबाया था" इस की कथा मैंने भी गया में सुनी थी, सो उन के इस संक्षेप से कहने ही में, मैं भी समझ गया।

तब हम लोग वहां से उत्तर की ओर दबते हुए पश्चिम चले। लगभग एक कोस के चले होंगे कि कुछ चढ़ाव सा मिलने लगा। आगे चल के देखा तो पृथ्वी में बड़े बड़े चट्टान जमाये हुए मिले औ चिकनी भूमि भी मिली। फिर आगे बढ़े तो ऐसा भारी महल देख पड़ा कि जैसे कोई महाराज का गढ़ हो। वह स्थान हम लोगों को क्यों देख पड़ता, पर उस भीत की जड़ में एक ऐसे अपूर्व पेड़ों की पङ्क्ति थी कि वे पेड़ प्रकाशमय थे। हम लोग समीप से उन पेड़ों को देख, एक अपूर्व आश्चर्य में डूब गये कि धन्य ईश्वर ! अंधेरे स्थान के लिये पेड़ भी ऐसे बनाये कि जिनके फूल और पत्तों से भी उजाला निकल रहा है। इस उजाले से वहाँ दिन सा हो रहा था और इस कारण उस महल के खिड़की, झरोखे आदि स्पष्ट देख पड़ते थे।

हम लोग उस के बड़े फाटक की ओर पहुँचे तो देखा कि

द्वार के ऊपर बड़े अक्षरों की एक पङ्क्ति खुद रही है। ये अक्षर तिरहुत से कुछ कुछ मिलते थे। इस कारण इन का पढ़ना कठिन न था।

वहाँ यह श्लोक लिखा था कि—

"चाणक्यो नीतिचतुरो नन्दवंशनिकन्दनः।
युद्धोपकरणैर्युक्तं गृहमेतदकारयत्॥
अग्न्यष्टनगबाह्वाख्ये २७८३ शुभे यौधिष्ठिरेब्दके।
एतन्निर्म्मितिसम्पूर्तिरभूद्वर्षत्रयेण हि॥"

[नन्द के वंश को नष्ट करनेवाले नीति चतुर चाणक्य ने, युद्ध की सामग्रियों से भरा हुआ यह मकान; युधिष्ठिर संवत् २७८३ में बनवाया और यह मकान तीन बरसों में बन कर पूरा हुआ।]

मैंने मुद्राराक्षसादि कई ग्रन्थ ऐसे पढ़े थे जिस से चाणक्य की कथा मैं भली भांति जानता था। इस लिये इसी क्षण मुझे चाणक्य की बुद्धिमत्ता औ महिमा का पुनः स्मरण हो गया और हम लोग सब कोई यह देख के चकित हो गये कि भूगर्भ के भीतर भी चाणक्य ने यह आश्चर्य रचना कर रक्खी है।

साहब ने चट वह श्लोक लिख लिया और कहा कि इस गढ़ को बाहर भीतर अच्छी तरह देखना चाहिये।

हम लोग द्वार के पास गये तो देखा कि फाटक भीतर से बन्द है। कितना धक्का धुक्की किया, पर साहब ने कहा, यह व्यर्थ है, क्योंकि पहले तो ये किवाड़ ही ऐसे नहीं हैं कि इन पर कुछ भी हम लोगों के बल लहने की आशा हो औ फिर हमें इस में और और भी सन्देह होते हैं। हम लोगों के पूछने पर साहब ने कहा कि आश्चर्य है कि आप राजपुताने के रहनेवाले हो कर भी ऐसी बात पूछते हैं। गढ़ों के द्वार पर अनेक धोखे होते हैं। कितने ही मारक यन्त्र लगाये जाते हैं। इस लिये सूधे फाटक हो के गढ़ों में बहुत समझ के घुसना होता है, सो चलो, कोई और पथ ढूँढ़ें।

तब मैंने कहा कि आज कल राजपुताने की यही व्यवस्था है।

किसी दिन हम लोग रात दिन राजनीति विद्या ही में निरत रहते थे। फिर राग तान गान में डूबे। और अब तो बड़े धनिक क्षत्रिय लोग सैकड़ों पातर (रखनी) रख, तारों में चाँद बन रहे हैं। बनिये लोग सूद ब्याज में मरे जाते हैं। ब्राह्मण लोग "अन्दाता ब्राह्मण छूँ, थाँकी माला फेरूँ छूँ" [अन्नदाता! ब्राह्मण हूँ, आपके नाम की माला फेर रहा हूँ।] कर रहे हैं। बाकी कोई कलाकन्द बनाता है। कोई अमलवेद बनाता है। फिर, मैं भी इसी समय के राजपुताने का हूँ।

तब हम लोग पथ ढूँढने को इधर उधर घूमने लगे।

घूमते घूमते एक खासा बाँस पाया। साहब ने चट उसको उठा लिया और कहा कि इसी के आसरे हम लोग भींत फाँद के गढ़ के भीतर जायंगे। उन ने भींत में टेढ़ा सटा के बाँस खड़ा कर दिया और चट सटकते फटकते चढ़ ही तो चले। यद्यपि उस बाँस के अग्र भाग से भींत अधिक ऊँची थी तौ भी साहब ने गिरने का कुछ डर न किया और भींत के घास फूसों को पकड़ चढ़ने का यत्न किया।

परन्तु यह यत्न विफल हुआ। साहब ने जो जो घास फूस पकड़े वे सब टूट टूट गये तब हार के वहाँ से उतरे। इधर उधर घूमने लगे तब तक एक और छोटा सा बाँस मिला। साहब के कहने से मैं उसे भी उठा लाया। अब साहब तो इधर से उधर और उधर से इधर इसलिये दौड़ते थे कि भीतर जाने का कोई उपाय निकले। मैं इस कौतुक में था कि देखूँ अब क्या उपाय निकलता है, और बङ्गाली बाबू छन छन में कहते जाते थे कि बस बहुत भया, अब पृथ्वी पर चलने का उद्योग कीजिये। उसी भींत के साथ २ थोड़ी देर के घूमने अनन्तर एक बेर चश्मा लगा कर थोड़ी दूर पर पीछे हट भली भाँति भींत की ओर देख कर साहब ने कहा कि "देखो यहाँ भींत के पास भितरी ओर पास ही एक आम का पेड़ है और जान पड़ता है कि उसके ऊपर गुरुच की लतर चढ़ी

है, यदि वह हाथ में आ जाय तो काम पूरा होगा"। यह सुन हमने मनीमन कहा कि 'वाह रे अंग्रेज या तो ऐसी सोचान सोचने वाले शिवाजी ही हो गये हैं और या तुमी हो'।

तब तक तो साहब ने आ के उसी भींत में टेढ़ा बाँस सटा दिया और दूसरे छोटे बाँस के अग्र भाग में केले के छिलके की डोरी से कुछ झाड़ झंखाड़ बाँध लिये और आप फुरती के साथ जूता और मोजा उतार कर लालटेन दूर रख मल्लू की भांति चट उस बाँस पर चढ़ते ही तो हुए। इधर हम दोनों आदमी बाँस थामे हुए थे। थोड़ी ही देर में साहब उस बाँस की नोक तक पहुँचे और फिर एक अधटूटी ईंटे को पकड़ अध खड़े हो मुझ से छोटा बाँस माँग उसके पैंतरे भाँजने लगे। उनके थोड़े ही जतन से वह झंखाड़ उस नीम में जा लगा और इन गुरुचों की लतर उसमें फँस गई। और जब इस में भली भांति उलझ गई तब साहब ने धीरे धीरे घींची तो कई गुरुचों की सूखी प्रबल डोरियाँ साहब के हाथ लगीं। जब साहब ने घींच घाँच, तान झटका दे, झोक झाक कर, इसकी परीक्षा कर ली कि यह एक आदमी का बोझा निःसन्देह सम्हाल सकती है तब साहब छोटे बाँस को पटक उसी गुरुच की लता को दोनों हाथों से पकड़ टूटी फूटी ईंटों का सहारा लेते उस भींत के ऊपर चढ़ गए। ऊपर जा के चश्मा लगा कर चारों ओर देख एक ओर दौड़ गये और कौन जाने कहाँ से एक सीढ़ी घसीटते ले आये और लटका कर हम लोगों से बोले कि "बस आप लोग बिना परिश्रम चढ़ आइये और कृपा कर के मेरी लालटेन और जूते और मोजे भी लेते आइये"। मुझे कहना भी न पड़ा, बङ्गाली बाबू ने जूते और मोजे चट उठा लिये और आगे ही सीढ़ी पर चढ़ पड़े। मैं भी लालटेन ले पीछे पीछे उसी सीढ़ी पर चढ़ा।

अब विस्तार करूँगा तो इस किले के वर्णन का एक बड़ा ही ग्रन्थ सा होय जायगा। संक्षेप ही में सुन लीजिये कि ऊपर आते

ही हम लोगों ने विचित्र शोभा देखी। छतों और बुरुजों के ऊपर छोटे छोटे ऐसे पौधों की पङ्क्त लगी थी कि उनके फूल और पत्तों से उजाला निकलता था और उनके पास पास भींतों में ऐसे बड़े बड़े स्फटिक के दर्पण जड़े थे, कि उनसे वह प्रकाश दूना चौगुना हो कर सामने दौड़ता था और किले के भीतर थोड़ी थोड़ी दूर पर ऐसी मणियाँ लगी थीं कि उनके प्रकाश की चाँदनी सी फैल रही था। यहाँ तक कि उस किले में अन्धेरा कहीं खोजने से भी न मिलता था। हम लोग शोभा देखते किसी सीढ़ी से उतरे और स्थान स्थान में तरवार बरछी त्रिशूल कटार आदि लाखों हथियारों का समूह देख के चकित हो गये। और तो और जहाँ तहाँ गोले बारूद बन्दूक और तोप भी जहाँ सहस्रों प्रकार की, सहस्रों ही देखने में आईं, जिन्हें देख देख साहब कहते जाते थे कि देखिये, आपके देशी लोग कितने प्राचीन काल से बन्दूक और बारूद के प्रकार जानते हैं। और क्या कहूँ, स्थान स्थान में झरने झरते थे, जिनके ऊपर करोड़ों जल की कलें वार के फेंक दी जायँ और एक ओर हम लोगों ने देखा कि पचासों कोठरियाँ हैं और सबके द्वारों पर संस्कृत में कुछ कुछ लिखा था। समीप आके हम लोगों ने देखा और पढ़ा कि उन्हीं अक्षरों में "विषम्" "भोज्यम्" "शस्त्रम्" "वस्त्रम्" इत्यादि लिखा था। विषवाली कोठरी में इतने यन्त्र औ मणियों के पात्रों में विष रखे थे कि हम लोग कुछ समझ न सके और हम लोगों को यह डर हुआ कि इसकी हवा से हम लोग भी न मर जायँ, इस डर से हम लोग लौट आये। "भोज्यम्" वाली कोठरी में बड़ा ही आश्चर्य देखा। वहाँ सहस्रों रूई के बोरे लदे थे। एक बोरा खोल के देखा तो उसमें बाटियाँ मिलीं। साहब ने उसी समय एक बाटी तोड़ के खाई और जै जेब में अमाईं तै भर लीं और बङ्गाली बाबू ने भी वही कर्म किया, पर मैंने तो वैष्णवता के कारण न कुछ खाया न उठाया। साहब चकित हो, क्षण क्षण में इसकी प्रशंसा करते, दाँतों से अँगुली दबाते थे कि भारत-

वासियों ने यह कौन सी युक्ति कहाँ से सीखी थी कि सहस्रों वर्ष तक खाने के सिद्ध पदार्थ न बिगड़ें।

घूम के फाटक की ओर हम लोगों ने देखा तो साहब का अनुभव ठीक पाया। फाटक के समीप एक भारी तोप, कल पर चढ़ी, भरी रखी थी; और उसमें ऐसे यन्त्र लगे थे कि फाटक खुलते ही वह आप ही छूट पड़े और सामने के सहस्रों मनुष्यों की राख की ढेरी लगा दे। किले के ठीक मध्य में एक बड़ी सुन्दर भारी कोठी थी। उस में भी हम लोग घुसे। भीतर वैसा ही उजाला पाया। एक ओर से ऊपर चढ़ने की सीढ़ियां थीं। उसकी पहली सीढ़ी पर ज्यों साहब ने पांव दिया कि सीढ़ी के ऊपर की चौकी पर खड़ा हुआ एक मनुष्य, सिर घुमा के देखता हुआ देख पड़ा। उसको देखते ही हम लोग समझ गये कि यह बनाया हुआ मनुष्य है। फिर ज्यों दूसरी सीढ़ी पर पांव रक्खा कि वह मनुष्य पूरा २ हम लोगों की तरफ घूम गया और सामने पंजा हिला कर मानों हम लोगों को ऊपर जाने से मना करने लगा। उस समय उसका पहरावा देख कर हम लोगों को प्रत्यक्ष हुआ कि चन्द्रगुप्त के समय में सिपाही लोग कैसे कपड़े पहरते थे। हम लोगों को इसे देख आश्चर्य भी होता जाता था और भय भी होता जाता था। पर साहब न माने, तीसरी सीढ़ी पर भी पैर रक्खा। तबतक उसने भी चट सामने बन्दूक तान दी। जब उस पर से साहब ने पैर हटा लिया तो फिर बन्दूक को बांये हाथ में ले, दहने हाथ से वैसे ही मना करने लगा। यों ही साहब उलट पुलट, उन तीनों सीढ़ियों पर पैर रख गये और वह बनाया हुआ सिपाही भी वैसे ही नखरे करता गया। साहब ने कहा कि चौथी सीढ़ी पर पैर रखते ही यह बन्दूक मार देगा। इस में ऐसी ही कल लगी है कि चौथी सीढ़ी के दबने ही से बन्दूक साथ ही छूट जाय। तब हम लोगों ने चौथी सीढ़ी छोड़, पांचवीं सीढ़ी को हाथ से दबाया तो वह चपरासी बन्दूक समेट कोने में खड़ा होने लगा। तब हम

लोगों को निश्चय हुआ कि चौथी सीढ़ी छोड़ जाने पर कोई भय नहीं है। बस, हम लोग वैसे ही चढ़ गये। ऊपर जा कर जो शोभा और आश्चर्य देखे सो अकथनीय है। सामने एक मणिमय चौकी पर एक तालियों का झब्बा था। हम लोगों ने उसे केवल दूर से देखा और पुराने शिल्पकारों की प्रशंसा करते हुए कुशल से नीचे उतरे, किले के बाहर चले आये।

इतना वृत्तान्त सुन सब कोई चकित हो गये और भारत की शिल्पविद्या के विषय में आश्चर्य करने लगे। वह भी मुंह पोंछ, रूमाल से कुछ हवा कर, खांस छींक, फिर मुँह पोंछ, स्थिर हुआ। तब लोगों ने कहा कि ठाकुर साहब! आप को परिश्रम भी होता है और यह बारह बजती है। हम लोग भी भूख औ घाम से व्याकुल हैं, पर आप जो बात कह रहे हैं, सो ऐसी आश्चर्यमयी और मधुर है, कि अभी लूट आ जाय तो भी हम लोग न हटें। सो कृपा कर के आगे चलिये। उसने कहा "हां हां सुनिये, मैं भी जब तक ये बातें किसी से कह न लूँगा, तब तक मेरे पेट में बिल्ली सी लड़ती रहेंगी, सुनिये। मैं यह सब छोड़ गया हूँ कि हम लोग बड़ी देर तक उस किले में बैठे और लेटे और जल पिया और ठहाके उड़ाये। हाँ, संक्षेप से सुनिये, अग्निवृक्ष के एक एक दो दो गुच्छे हम लोगों ने तोड़ लिये और बर्कंदाजों की लालटेनों की भांति कमर में लगा लिये और उत्साह से भर, झूमते झामते फिर आगे बढ़े। हम लोग कई कोस तक गये, कितना कहें। अनन्तर एक स्थान में समस्त काली मट्टी और यव तिल के गन्धवाली राख पाई। हम लोग क्या निश्चय करते! हम लोग इस देश के हो कर तो विदेशी ऐसे घूमते थे और यूरप के रहने-वाले एक साहब हम लोगों के पण्डे थे। उन्हीं ने कहा कि यह विश्वामित्र के यज्ञ का स्थान जान पड़ता है और कदाचित् हम लोग बकसर तक पहुँच गये। मैंने ज्यों ही विश्वामित्राश्रम का नाम सुना त्यों ही मुझे श्रीरामचन्द्र के वहाँ आगमन का स्मरण

हुआ और मेरे नेत्रों में आनन्दाश्रु उमग आये। मैंने वह राख सिर में लगाई और थोड़ी सी पगड़ी के कोने में उठा ली। यह किसी ने न देखा। फिर आगे बढ़े। बैठते उठते, ठहरते लुढ़कते, क्या जाने कितने कोस चले आये। तब एक ठिकाने चट्टान पर बैठे। वहाँ उन दोनों ने तो चाणक्यवाली बाटियाँ खाईं, पर मैं यों ही बैठा रहा। मुझे देख, बङ्गाली बाबू तो मुझे उल्लू समझते थे, पर साहब मुझे पराक्रमी और पुरुषार्थी समझते थे। फिर वहां से उठ हम लोग एक अंधेरी सी कन्दरा में पच्छिम की ओर चल पड़े

थोड़ी दूर आगे चलते ही थे कि जल की ढलढल ध्वनि सुन पड़ी। तब साहब ने अपनी लालटेम की एक खूंटी घुमा दी और साथ ही उस का प्रकाश ऐसा बढ़ गया कि मानो चांद को हाथ में ले लिया हो। फिर उस के प्रकाश से हम लोग देखने लगे तो देख पड़ा कि हम लोग बड़े प्रशस्त स्थान में आ पड़े हैं। अभी तक केवल लगढग २० फुट चौड़ी कन्दरा थी पर अब देखा तो बड़ी दूर तक का अवकाश देख पड़ा और अवकाश क्या था, एक ईश्वर की विचित्र सृष्टि थी। उस स्थान का वर्णन करना मेरा काम नहीं। वह तो वेदव्यास और वाल्मीकि की लेखनी के नृत्य का स्थान था, तो भी संक्षेप से कहता हूँ सुनिये।

वहां हम लोगों के सिर से एक पुरसा और ऊँची तो पहाड़ की छत हो गई थी और वह पृथ्वी से उतनी ही समानान्तर दूरी पर, बराबर बड़ी दूर तक चली गई थी और जैसे किसी राजमन्दिर की बड़ी दालान में दूर दूर खम्भ लगे हों, वैसे ही देखा कि पचास पचास साठ साठ हाथ की दूरी पर स्वयं नीचे से ऊपर तक आधार लगे हैं और खम्भ का काम दे रहे हैं।

हम लोग तो उस लालटेम के इतने प्रकाश होने पर भी पूरी शोभा न देख सकते, पर थोड़ी थोड़ी दूर पर बीच में छोटे २ एक ऐसे विचित्र पौधे खिल रहे थे, जिनके फूलों में तारों की सी चम-

चमाहट थी और उनी के उजियाले से उस अपूर्व कुञ्जभवन में चारों ओर चाँदनी सी छटक गई थी। वाह रे जगदीश्वर! जहां सूर्य और चन्द्र की गति नहीं, वहां के पेड़ ही ऐसे बना दिये कि सूर्य चन्द्र की आवश्यकता न पड़े।

आः, उन खम्भों पर कैसी घनी हरी हरी लटकती हुई लतायें चढ़ गई थीं, और उन के बीच बीच में कैसे लाल, पीले, सौसनी, गुलाबी, नीले, और सपेद फूलों के गुच्छे फूल रहे थे कि मानों पन्ने के खम्भों पर मानिक, पद्मराग, नीलम, चुन्नी, हीरे आदि के भांति भांति के काम हो रहे हैं। कहीं कहीं एक खम्भे के सिर से दूसरे खम्भे के सिर तक एक लतर सूधी दौड़ गई थी और उसके भारी भारी पीले पीले फूलों की पङ्क्ति ऐसी झूल गई थी कि मानों किसी बड़े चतुर माली ने एक विचित्र बन्दनवार बनाई हो।

भूमि में रेसम से नरम, छोटे छोटे हरे हरे घास पटसार फैल रहे थे औ उसमें भी थोड़ी थोड़ी दूर पर छोटे २ फूल ऐसे क्रम से चमक रहे थे कि मानों उसी भूमि को देख देख लोगों ने गलीचा बनाना सीखा हो।

कुछ दूर उसी शोभा को देखते हम लोग आगे बढ़े तो देखा कि बड़ा उजाला हो रहा है औ कई ठिकाने ऊपर के तल से नीचे के तल तक, मोतियों के परदे लहलहा रहे हैं। इसे देखते ही हम लोगों से रहा नहीं गया और एक परदे के समीप चले ही तो आये वहां आ के देखा तो जान पड़ा कि वह हम लोगों की भूल थी कि हम लोगों ने उसे मोतियों का पट समझा था पर वहाँ छत में एक ऐसा विचित्र पत्थर था जिस्में से सहस्रों बिन्दु बिन्दु हो कर पानी चू रहा था और वे बूंदें ऐसी चट चट गिरती थीं कि भूतल से ऊपर तक छा रही थीं और हम लोग उसके पूर्व की ओर थे और पच्छिम से चमकता उजाला उन बूँदों को भेद कर आ रहा था, इस लिये वह पूरी पूरी मोतियों ही की

चिक जान पड़ती थी। इस ठिकाने जल की और भी अधिक अधिक ढलढलाहट सुन पड़ती थी, उस से अनुमान में आता था कि मानो हम लोगों के सिर पर बड़ी धूमधाम से कोई नदी बहती है। हम लोगों ने कितना ही जानने का जतन किया कि हम लोग किस स्थान तक चले आये हैं और किस नदी के नीचे चले जाते हैं, पर कुछ समझ न पड़ा। हम लोगों को बड़ी प्यास लगी थी, सो, सब की इच्छा हुई कि पानी पीयें। ज्यों ही हम लोग पानी पीने की इच्छा से उस झरने के अति समीप आये कि अचानक हम लोगों के सिर के ऊपर की ओर फरफराहट के साथ किसी चिड़िया के बोलने और उड़ चलने की सी आहट आई और मेरे बायें कन्धे पर धड़ से कुछ ठण्ढा २ नरम गरम गिरा। मैं सांप २ कह, कूद के अलग हो गया पर फिर स्थिर दृष्टि से देखा तो वह एक अङ्गुरों का गुच्छा देख पड़ा। फिर हम लोगों ने ऊपर की ओर अपनी दृष्टि फेरी तो देख पड़ा कि वहां सैकड़ों अंगूरों के झुमके लटक रहे हैं। हम लोगों ने अंगूर के कई गुच्छे तोड़ लिये और इधर उधर टहल के देखा तो पिस्ता, बादाम, अनार, मुनक्का किसमिस आदि अनेक मेवे पाये। तब तो हम लोगों ने भूखे ब्राह्मण की भांति आसन जमा, बैठ के, परिपूर्ण भोजन किया और वहीं झर-झर झरता झरने का जल पिया। उन मेवों के और उस जल के स्वाद का वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है।

वहाँ बीच बीच में एक विचित्र पीले पत्थर की चट्टानें पड़ी थीं, उन्हीं पर हम तीनों जा कर लेट गये और इतनी नींद से सोये कि ईश्वर जाने, बारह घण्टे पड़े रहे कि चौबीस घण्टे।

फिर उठ के हाथ मुँह धो हम लोग बड़ी देर तक बैठ, वहीं बातचीत करते रहे; तब तक साहब ने जेब से पाकटबुक निकाल, इतनी यात्रा का सब हाल लिख डाला, और बोले कि अब चलना चाहिये। हम लोग फिर चले, इतने में देखा कि एक चट्टान में कुछ लिखा हुआ है, पर क्या है सो पढ़ा नहीं जाता। तब साहब

ने अपने जेब से सैकड़ों तरह की अक्षरावली निकाली और एक एक से उसे मिलाने लगे तो विदित हुआ कि गौरीतन्त्र वर्णोद्धार के अनुसार, ये अति प्राचीन अक्षर हैं औ उनके अनुसार पढ़ने से वह यह श्लोक निकला:—

"पापापहारि दुरितारितरङ्गधारि
शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि।
झङ्कारकारि हरिपादरजोऽपहारि
गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि" ॥
"स्नातवान् गाङ्गतीर्थेस्मिन् सशिष्यो देवलो मुनिः।
स्नायादस्मिन् भुवो गर्भे को जनः सुकृतैर्विना" ॥

[पाप को दूर करने वाला, पाप की शत्रु रूपी तरङ्गों को धारण करनेवाला, पहाड़ से निकलनेवाला, हिमालय की गुफाओं को फोड़ने वाला, झंकार (शब्द) युक्त भगवान् विष्णु (के चरण-कमल से निकलने के कारण) की पदरज को धारण करनेवाला तथा मंगल करनेवाला गङ्गाजी का जल, सदा पवित्र करे।]

[गङ्गाजी के इस तीर्थ में, शिष्य सहित देवलमुनि ने स्नान किया। पृथ्वी के भीतर के इस तीर्थ में पुण्य के बिना कौन स्नान कर सकता है?]

साहब कुछ कुछ संस्कृत जानते थे, इसका अर्थ समझ गये और बोले कि देखो! हिन्दुओं के धर्मशास्त्र बनानेवाले देवल ऋषि ने यहाँ आ के स्नान किया है। यह गंगाजल बह रहा है। यहाँ स्नान का बड़ा पुण्य है। आओ! हम भी नहावें, तुम लोग भी नहाओ। मैंने पूछा "क्या साहब! आप भी हमारे हिन्दू धर्म पर विश्वास करते हैं?" तब साहब ने कहा "हाँ हाँ! अवश्य" तब बंगाली बाबू बोले कि "साहब हम लोगों का मन रखता है।" इसके अनन्तर हम तीनों में यों बातचीत हुई। साहब और बंगाली बाबू जैसी हिन्दी में बोलते थे सो आप लोगों को बता ही चुका हूँ। अब उनका तात्पर्य मात्र कहता हूँ।

मैं—क्या साहब ! ठीक कहिये ! क्या आपको पूरा विश्वास है कि गंगास्नान करने से पुण्य होगा ?

साहब—हाँ हाँ, बड़े बड़े महर्षि इस बात को कह गये हैं ।

मैं—महर्षि तो कह गये हैं पर क्या आप भी मानते हैं ? वह तो हम विचारे हिन्दुओं के लिये है ।

साहब—क्या महर्षि लोग यह भी कह गये हैं कि यहाँ स्नान करने से हिन्दू ही को पुण्य होगा, दूसरे को नहीं ? हम लोग तो देखते हैं कि उन लोगों का ऐसा उदार हृदय था कि उनने पशु-पक्षियों को भी स्नान करने से मोक्ष बतलाया है ।

मैं—आप धन्य हैं कि आप हमारे महर्षियों के वचनों पर इतना ध्यान देते हैं, पर क्या कारण है कि आप के देशी लोग हमारे सनातनधर्म के ग्रन्थों पर विश्वास नहीं करते ? मैंने तो आज तक केवल आप ही को देखा कि आप हिन्दू धर्म के इतने आग्रही हैं ।

साहब—जो सत्य के खोजनेवाले हैं, वे अवश्य भारतवर्ष के महर्षियों के सिद्धान्त को मानते हैं । आप खोजते तो ईरानी, तूरानी, अमेरिकन, यूरोपियन सभी में हजारों आदमी ऐसे मिलते जो हिन्दुओं से भी बढ़के विश्वासी हैं और यों तो हिन्दुओं में भी लाखों हैं ऐसे, जो हमारे देशियों से भी अधिक भ्रष्ट हैं ।

बंगाली बाबू—अच्छा, गङ्गा स्नान करने से पुण्य होता है इसमें युक्ति क्या है और विना युक्ति समझे कैसे बुद्धिमान लोग मान सक्ते हैं ?

साहब—हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि आप हिन्दू हो कर भी ऐसा प्रश्न करते हैं ! आपके देश के आचार्य लोग वे थे, जिनने समूचे संसार को विद्या सिखाई है । वे लोग ऐसे न थे कि बात बात में भूल करें । जिसका उन्होंने सिद्धान्त कर लिया था कि यह अवश्य करना चाहिये, उसको दृढ़ आज्ञा दे गये हैं और युक्तियों का जंजाल छोड़ दिया है ।

बंगाली बाबू—ठीक नहीं समझ पड़ा ।

साहब—सुनिये, एक काम करने का होता है और दूसरा केवल कहने सुनने का औ पण्डिताई दिखाने का होता है। तो करने के काम से और बकबक से बहुत भेद है। देखिये, मल्लाह लोग आकाश का धुमैला रङ्ग देखते ही आंधी आवैगी, यह निश्चय कर लेते हैं औ अपनी नाव बचा लेते हैं औ अपने लड़कों को सिखला जाते हैं। यदि वे अनुमान की सब युक्तियां भी साथ ही सीखने सिखलाने लगें तो छोटी सी बात कई बरस में पूरी हो और फिर उस पर बहुत से सन्देह और तर्क वितर्क रही जायं। देखिये न, आप के नवद्वीप के भट्टाचार्य लोग लड़कपन से बुढ़ौती तक अनुमान खण्ड पढ़ते हैं और फिर भी उस शास्त्र का अन्त नहीं पाते और धुआं देख आग लगने का ज्ञान जैसा उन्हें होता है वैसा ही एक बज्रमूर्ख गंवइयाँ मुझ को होता है—तब कहो वह उनका अनुमान खण्ड यहाँ क्या काम आया? जब घर में आग लगी हो तब जो कोई बड़ा बूढ़ा कहै कि भागो! आग लगी, तो वहां उसकी बात सुनते ही भागना चाहिये कि 'वह्निमान् धूमान्' [नैयायिक चार प्रकार के प्रमाण मानते हैं। उनमें एक "अनुमान" है। 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' अर्थात् पहाड़ पर आग है, धूएँ से मालूम पड़ता है। कवि का अभिप्राय है कि अनुमान अथवा आप्त वाक्य को प्रमाण मानना चाहिये।] निकाल, अपने को उस अग्नि का पतंग बनाना। कुछ नहीं, ऐसे ठिकाने बुद्धिमान को इतना ही देख लेना चाहिये कि वह बुड्ढा पागल नहीं है, मूर्ख नहीं है और झूटा नहीं है, तब अवश्य ठीक ही है, यह निश्चय कर भागना। वैसे ही यह संसार में जन्म-मरण के अमोघ दुःख की अग्नि धधक रही है, इस से बचने का जो उपाय बूढ़े महर्षि लोग जो कुछ बतला गये हैं, उसे चटपट करना; न कि उसके बकबक झकझक में सिर खाली करना। बस हुआ, जिन महात्माओं के कहे अनुसार आज तक भयङ्कर भयङ्कर रोगों की चिकित्सा भी भूसे और घासों से होती है; जिन महात्माओं के कहे ज्योतिष से आज तक ग्रहण आदि

मिलते हैं और भूत भविष्य का ज्ञान होता है, जिन महात्माओं का शास्त्र आजतक जगमगा रहा है, उन महात्माओं के इन बचनों ही में शङ्का कर ऊबकचूबा होते रहना कौन बुद्धिमानी का काम है—चलो बहुत हुआ, अब स्नान करें।

फिर हम लोग तीनों ने वहां स्नान किया और फिर थोड़ी देर तक जिधर बड़ा उजाला देख पड़ता था, उधर, पश्चिम की ओर चले।

कुछ दूर चल के देखा कि एक बड़ी भारी चट्टान ऊपर से लटक रही है और उस में उनी यन्त्र शास्त्र वाले अक्षरों में कुछ लिखा है—अक्षर, तिरहुत और बंगला अक्षरों से बहुत मिलते थे। साहब ने कहा, देखिये, भारतवर्ष के सब से प्राचीन अक्षर ये ही हैं। इनी से संसार भर के सब अक्षर निकले हैं। फिर जब से उनी अक्षरावलियों को निकाल, साहब ने मिला जुला, पढ़ा तो यह यों पढ़ा गया।

"व्यासाश्रम"

"काशी द्विजाशीर्भिरहो सुलभ्या किं वा प्रसादेन च विश्वभर्तुः"

[ब्राह्मणों के आशीर्वाद से या भगवान् के प्रसाद से काशी मिल सकती है।]

बस, साहब ने इस श्लोक को लिख लिया औ कहा कि हम लोग काशी तक आ गये, काशी खण्ड के तर्जुमे में हम लोगों ने देखा था कि कुछ दिन वेदव्यास ने काशी के पूर्व निवास किया था। बस, यह उनी की गुफा जान पड़ती है और यह सामने जो चमचमाहट आ रही है, यह काशी ही की तेजोमयी मूर्ति है।

फिर हम लोग आगे चले तो थोड़ी दूर पर सामने से इतनी चमक आने लगी कि आँख खोल चलना कठिन होगया।

इतनी दूर चल के हम लोग कुछ थक भी गये थे और वहाँ जैसा कुञ्जभवन ऐसा स्थान था, सो मैं कही चुका हूँ। सोनहुले

रङ्ग के मोटे मोटे चट्टान थोड़ी थोड़ी दूर पर स्वयं पड़े थे, लता फूलों की अपूर्व क्यारियाँ थीं। पानी कहीं तो मोतियों के परदों की भांति चलता था और कहीं पत्थरों के छेद में से फुहारे की भांति धार धार हो, निकलता था। इतने पर भी कहीं कहीं ज्वालामुखी स्थान ऐसा रमणीय बना था कि उजाला भी दूर तक था और उसकी गरमी से भूमि सूखी थी और जलधारा अधिक अधिक प्रिय लगती थी।

हम लोग थोड़ी दूर और आगे चले। अन्धेरे से आये थे, इसलिये पहले यह चमक बहुत ही कड़ी मालूम पड़ी थी पर अब सह चली। पीली चमक से हम लोग सब पीले होगये। और चारों ओर भी जैसे हलदी की बरपा होती हो, वा रामरज की आँधी उड़ती हो अथवा हरताल से सब कुछ लीप दिया गया हो, ऐसा पीला ही पीला देख पड़ने लगा। पर अब थकावट अधिक आ गई, हम लोगों को चलना कठिन हो गया। बैठ गये, अंगूर किसमिस खाये, जल पिया, गप्पैं उड़ाईं, गाया बजाया, औंघाई आने लगी, लेट गये। थोड़ी ही देर में मैंने देखा कि मेरे दोनों साथी तो एक इधर के चट्टान पर, एक और उधर के चट्टान पर पड़े घर्र घर्र कर रहे हैं और धीरे धीरे मन्द मन्द वायु चल रही है और कोरी पानी की झर झर झर ध्वनि आ रही है।

मैं अकेला जाग रहा हूँ, अब मेरे चित्त की बात न पूछिये, अब तो पेट में भांति भांति की खिचड़ी सीझने लगी, मन कबड्डी मारने लगा। कभी तो मेरी आँख के सामने यह दृश्य उपस्थित हुआ कि मानो मेरे सङ्गी साथी मुझे उसी बराबर के पहाड़ में खोज रहे हैं और उन में कोई रोता है, कोई कोई हवसता है, कोई आँसू बहाता है, कोई पुलिस पुलिस करता है और मानों यों ही घूमते घूमते उन लोगों ने किसी ठिकाने लोहूभरे बाघ के पञ्जों के चिह्न पाये और उसी को देख उनने हल्ला मचा दिया कि "बाप रे बाप! उसे तो सेर खा गया, यह देखो, यह उसे मार अभी

इधर से गया है" कभी आँख के आगे एक दम चित्र पट बदल गया और जयपुर नगर की तस्वीर खिंच गई। अब देख रहा हूं कि वे घर्र घर्र बग्घियाँ दौड़ रही हैं, वे सहस्रों रङ्ग-बिरङ्गी पगड़ियाँ चमक रही हैं, वे मोटे मोटे सेठ, दो दो सेर सोना गले में लटकाये इधर उधर टहल रहे हैं, यह सोने के कामवाली चूड़ी का बाजार है, वह सांगानेर के डुपट्टे बिक रहे हैं, वह हलवाई बरफी बना रहा है और आँखें मिलते ही पूछता है कि "क्यूं ? कलाकन्द ल्यो छो काईं !" [क्यों, कलाकन्द लेते हो क्या ?] ये इधर दलाल लोग कान खाये जाते हैं कि "फत्तर की मूरत ल्योला काईं ? चालो चालो ईंडीने देखो खलूणा की बीनी दुकान छै अर तसवीर बी चोखी र छै" [पत्थर की मूर्तियाँ लोगे क्या ? चलो चलो, इधर देखो, खिलौने की अच्छी अच्छी दूकानें हैं और तस्वीरें भी बढ़ियाँ बढ़ियाँ हैं] इधर बगल से वह दूसरा आदमी निकला जाता है, इस के कन्धे पर खोमचा है उस में पचासों तरह के पाचक हैं। यह बोल रहा है "अमलबेद अमलबे ए द, अमलबेद लीजो भाई अमलबेएएद" अब टनाठन्न आवाज से तो दूसरी ओर आंखें फेरनी ही पड़ीं, वाह इधर सुनार की दुकान है, बीच में बोरसी है, मोटे मोटे अंगारे सुलग रहे हैं, तीन सुनार हरी लाल पगड़ी बाँधे, लम्बी अंगरखी समेटे, बाँह चढ़ाये, पतली पतली पीतल की फुकनियों से, झोक झाक से फूंक मार रहे हैं, एक एक बेर तो उनके गाल रबर की गेंद से फूल जाते हैं और फिर पचक जाते हैं, एक ओर एक दूसरा नौजवान सा लड़का एक हाथ से संडसी से एक चांदी की गरम गुल्ली थाम, निहाई पर उलट पुलट कर रहा है और दहने हाथ से धड़ाधड़ हथौड़े जमा रहा है, और एक चौथा सुनार एक मट्टी की कूंडी में दोनों हाथ डाल मल रहा है, तब तक एक लड़के ने आकर झोक से कहा कि "क्यूं रामबकस ! तमएयों को दीनों नऽ" [क्यों रामबकस ! टड्डा (हाथ पर पहिनने एक का गहना) नहीं दिया न।]

तब उसने उसी कड़ी में से निकाल, दो चार सोने के दाने दिखलाये और कहा कि "यो देख थारोई काम करूं छूं, चाल स्यात् मैं लेर आयो।" [यह देखो, तुम्हारा ही काम कर रहा हूँ । चलो, जरा सी देर में लेकर आया] तक तक दूसरी ओर से झनाझन्न रुपयों की आवाज आई, देखा कि एक दुकान पर डांकिया खड़ा है, बेग से रुपये निकाल के दे रहा है और दुकानदार कान पर कलम रखे, चशमा लगाये, सावधानता से रुपये गिन रहा है और दूसरा एक आदमी मनीआर्डर की रसीद पर कुछ लिख रहा है। इतने में मनीआर्डर वाले ने कहा कि "आज वा बापडो मादो छै सये चीठ्यां बी म्हारै ई मांथै पड़ी छै। चिन्येक देखो तो या कुण की छै" [आज वह बेचारा बीमार है इसलिये ये चिट्ठियाँ भी मेरे ही माथे पड़ी हैं। जरा देखो तो यह किसकी है।] उसने पढ़ा तो मेरे ही नांव के साथ मेरे लड़के का नांव निकला। डाकिये ने पता पूछ लिया। उसने भी बता दिया कि "बस विश्वनाथ जी का मन्दिर कै कनै गली में जान्य चावै जी सूं ई गोपीनाथ जी बालमुकुन्द जी की ग्वाड़ी पूछ लीजो" [बस, विश्वनाथ जी के मंदिर के पास गली में जा कर, चाहे जिससे भी गोपीनाथ बालमुकुन्द जी का घर पूछ लेना।] वह बोला "मैं ई म्हौला में नयो छूं स सैंधो कोय नै" [मैं इस मोहल्ले में नया हूं, सो किसी से परिचय नहीं है।]

वह वहां से उठा, विश्वनाथ जी के मन्दिर के पास आ 'अगड़बं महादेव' कहता हुआ उसी गली में घुसा। कुछ पूछ पाछ कर मेरे मकान पर पहुँचा। दरवाजे पर से बोला "अजी गोपीनाथ जी छो कां ई" [अजी गोपीनाथ जी हो क्या ?] ऊपर से आवाज आई "कुण छै" [कौन है ?] इसने कहा कि "देखो थां का नावू की चीठी आई छै"। [देखो यह तुम्हारे नाम की चिट्ठी आई है ?] चट दरवाजा खुल गया एक लड़का नौ बरस का, गोटे की दुपलिया टोपी पहरे, कान में मुरकी झमकाये, हाथ पांव में चांदी का कड़ा पहने, सामने खड़ा हुआ और चिट्ठी के लिये हाथ

पसारा। डाकिये ने पूछा "थारो नांव ?" [तुम्हारा नाम ?] वह बोला, "बालमुकुन्द"। डाकिये ने कहा "अर गोपीनाथ जी कोटै ?" [और गोपीनाथजी कहां हैं ?] उसने कहा "दादाजी किलकत्तै गयाछे"। [दादा जी कलकत्ते गये हैं।] डाकिये ने कहा 'चोखो, चीठी बेरङ्ग छै, जा चाऱ्या पीसा ले आ" [अच्छा, चिट्ठी बैरंग है। जा, चार पैसे ले आ] लड़का आंगन की ओर फिर कर बोला "अरी मा, पीसा री पीसा चायजे" [ओ माँ! पैसे चाहियें, पैसे।] तब तक पायजेब झमझमाती, भारी घेर का घाघरा घमकाती, घूंघट काढ़, उसी में, अंगुली से छिद्र बना कर देखती, एक गोरी गोरी औरत चली आई और उसने एक आने के पैसे डांकिये के हाथ में दे दिये। डांकिया चिट्ठी दे, नौ दो ग्यारह हुआ।

भीतर दालान में वह मेरी स्त्री बैठी। लड़का इधर से उधर खेल उछल रहा है, मेरी बूढ़ी मा भी भीतर से खांसती हुई निकल आई। एक चिट्ठी बांचने वाला लड़का भी पड़ोस से बुला लिया गया। सब सुनने लगे। वह लिफाफा फाड़ पढ़ने लगा।

"सब को गया के पण्डा बैजनाथ का आशीर्वाद, आगे गोपीनाथजी यहाँ आये थे, यहाँ से निमट कर, बराबर के पहाड़ पर गये। वहाँ साथियों से सङ्ग छूट गया, पांच दिन से हम लोग खोज रहे हैं, पता नहीं, पहुचे हों तो खबर दीजियेगा। आगे क्या लिखें।" यह सुनते ही मेरी स्त्री औ मा रो उठी, लड़का भी रोने लगा "काईं छै काईं छै" (क्या है ? क्या है ?) करते अड़ोसी पड़ोसी आ जुटे। मेरा जी तो एकाएकी यह चरित्र देखते ही घबरा गया। और मेरे आंख से टपाटप आँसुओं की धारा लग गई, छाती धड़धड़ करने लगी, वेग से सर्वाङ्ग में रुधिर घूमने लगा और पसीने से शरीर भर गया। मैं चट उठा खड़ा हुआ और एक केले का पत्ता तोड़, उससे हवा करता, इधर उधर टहलने लगा। कभी फूल तोड़े, कभी तितलियाँ देखीं, कभी जल से मुंह आंख धोआ,

और कभी गुच्छों पर बैठे भौंरों को हाथ से उड़ा उड़ा के उन के झङ्कार सुने, पर चित्त स्थिर न हुआ।

फिर आ के उसी चट्टान पर लेटा और ऊपर की ओर जो लताओं के जाल छा रहे थे उन्हीं की ओर देखता, मनोमन अपने इष्टदेव श्रीनाथ जी महाराज के शरण गया और मानो मैं उस मंदिर के द्वार पर जा के पुकार ही उठा कि "दीनबन्धो ! मेरे घरवालों को धीरज धराइये और मुझे उन से मिलाइये।" उस समय श्रीनाथ जी के दर्शन में भी मैं ऐसा डूब गया कि यह नहीं जानता, वह मन्दिर ही मेरे समीप आ गया कि मैं ही मनोरथ के रथ पर चढ़ के वहाँ चला गया।

मैंने पढ़ा था कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"। [मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का मन ही कारण है।] सो सच है, मन ही ने तो मुझे जयपुर के चरित्र के स्मरण से रुला दिया और मन ही ने अब मुझे आनन्द-मन्दिर श्रीनाथद्वारे में पहुँचा, तरबतर कर दिया। बस, उस समय मानों मैं स्पष्ट ही देखने लगा कि ठाकुरजी के दर्शन खुले, होरी की झाँकी देखने को इस समय बड़ी ही भीड़ जुटी है। फाटक के खुलते ही जै जै जै की धूम मच गई, हम सब भीतर घुसे। उस श्यामवर्ण मोहिनी की मूर्त्ति का दर्शन किया। आनन्द के अश्रुपात से मेरे दोनों कान भींग गये, रोमाञ्च हो गया। होरी के दर्शन थे, अब पिचकारियां चलने लगीं, केसर गुलाब और चोव के सुगन्ध से घर भर गया। तानपूरे के साथ ध्रुवपद की लपट सुन पड़ने लगी और मृदंग की परन कान में पड़ी कि 'धिट किट धिट किट तान्'। मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह केवल मनोरथ न था किन्तु सचमुच कहीं से मृदंग की आवाज आई थी। मैं पड़ा ही पड़ा करवट ले; आंखें फाड़ देखने लगा। तब तक फिर मृदंग सुन पड़ा कि "धकटक धकटक तक धितांग, धिधि तान् धी धी तधुनक धप्पक तकडधकड तधान् धा, तकड़ धकड़ तधान् धा, तकड़ धकड़ तधान् धा।"

अब मैं पहले के सब चरित्र भूल गया और वहाँ से उठ चला। उस समय मेरा चित्त कैसा डहडहा रहा था सो मैं कुछ कह नहीं सकता हूँ। वह चारों ओर से सोने के चट्टानों की चमक, वह चूते हुए पानी के झालरों में उन की दूनी दमक, वह ठौर ठौर लताओं के फूलों पर भौंरों के झंकार की झमक, और उस के साथ साथ उस मृदङ्ग की धमक, एकाएकी मुझे परवश किये देती थी।

थोड़ी दूर चलते ही मेरा शरीर चमक उठा और चित्त में अचानक वह बात आ गई कि कहीं अब मैं इस स्थान को भूल जाऊँ और इधर ही उधर चक्कर मारता फिरूँ, इन साथियों को न पाऊँ तो क्या होगा !! बस चट लौट के फिर उसी स्थान में आ खड़ा हुआ। अब न तो मृदङ्ग की आशा छोड़ वहाँ ही बैठने का जी करता है और न सङ्ग छुट जाने के डर से, उने छोड़ मृदंग ही के अनुसन्धान में जाने का साहस होता है। बेर बेर उन धुर्राटे मारते साहब और बंगाली बाबू की ओर देखता था और बेर बेर जिस ओर से वह मृदंग की धमक जी को घसीटती थी उस ओर देखता था। फिर न रहा गया तब अपने डुपट्टे को एक तला से दूसरी तला तक ऐसा तान दिया कि दूर से देख पड़े। थोड़ी दूर जा के फिर लौटा और एक सांवले फूल को चुटकी से मल, उन सूते हुए घनचक्करों के सामने वाली एक चट्टान पर लिख दिया कि "अभी आता हूँ, कहीं जाना मत।" और बस मैं वहाँ से लम्बा हुआ।

यद्यपि वहाँ मुझे दिशा का तो कुछ भी ज्ञान नहीं था, तो भी मैं समझता हूं कि मैं उत्तर और पच्छिम की ओर कभी इधर कभी उधर झुकता चला।

मैं वहां से चला तो थोड़ी दूर के अनन्तर वह चमक दमक बढ़ने लगी। अब देखता हूँ तो भूमि कुछ कुछ चढ़ाव की है। ऊपर नीचे, इधर उधर चारों ओर पीली चमकों से आखें तिरमिराने लगीं। मैंने ध्यान दे के देखा। वह भूभाग केवल सोने ही सोने का

था। थोड़ी थोड़ी दूर पर सोने ही की गोल बुर्जें सी थीं; थोड़ी थोड़ी दूर पर सोने ही के ऐसे चट्टान और मुड़ेरे से बने थे मानों आये गये लोगों के बैठने को किसी ने बनवा रखे हों। बीच बीच में उसी ताव दिये सोने के खम्भे ऐसे उठे थे औ वहाँ की भूमि में भी एक हरताल की बुकनी ऐसी विचित्र मट्टी थी और उस में ऐसी ऐसी लता जमी थी और उन खम्भों पर घूमी थी कि बस देखते ही बन आवै।

इतनी दूर आने पर मुझे फिर वही धोखा हुआ कि "क्या जी ! कहीं ऐसा ... न होगा कि तुम दूर चले जाओ और फिर फिरो तो अपने साथियों से मिलने का रास्ता ही भूल जाओ ?" यह भी जी में आया कि "ऐसा क्या मैं निरा उल्लू ही हूँ कि दस पैंड चलते ही अक्ल चली जायगी ?" फिर जी ही जी में मैं यों भी बोल उठा कि "दुर उल्लू, दस नहीं सौ पैंड गये तो ? और सचमुच भूल ही गये तो ?" तब तो मैं चट खड़ा हो जहाँ साथी लोग थे उधर देखने लगा। परन्तु उस चमाचम की झमा चौकड़ी में देखा कि मेरा ताना हुआ दुपट्टा आदि कुछ भी नहीं देख पड़ता। क्या कहूं साहब ! समझ लीजिये कि मैं फिरा। थोड़ी दूर चलने पर फिर वह डुपट्टा देख पड़ने लगा। फिर वहीं खड़ा हो गया। इधर मृदङ्ग के साथ कुछ २ गाने की भी धुन सुन पड़ी। इस स्वरावर्त ने कान में पड़ते ही मानों मेरा कान ऐंठ दिया, और अपनी ओर सिर घुमाया। समझ पड़ा कि वह मालकोश का आरोह है। बस, इसने कान पकड़ मुझे घींचा ही तो।

मैं भी कुछ कुछ गाना बजाना जानता हूँ और मैं समझता हूँ कि जिसे सङ्गीत में प्रेम नहीं उसे कि तो कान नहीं, कि बुद्धि नहीं अथवा भाग्य नहीं। यद्यपि मैं यह सोच रहा था कि मैं कुछ फूलों के गुच्छे बीच बीच में कहीं कहीं खोंसता जाऊँ कि उने देखता हुआ चट लौट सकूँ, पर जब कान में यह आकर्षणी शक्ति का अंकुश लगा तब कौन वहां ठहर सक्ता है। मालकोश

स्वयं भी गा सकता हूँ और सैकड़ों बेर मैंने इसका आलाप अच्छे अच्छे बीनकार और रवाबियों से सुना भी है, पर मैं नहीं जानता कि उस समय के गान में किस कारण से इतनी अमृत-वर्षा थी कि मैं अपने को भूल गया। आहा! मालकोश में वही तो पाँच सुर हैं, उनी के हेर फेर से यह समुद्र की सी तरंगें लह-लहाता मालकोश राग होता है। सब इसी को गाते हैं पर वह सुर ही और थे कि वह गाना ही और था कि वह आरोह अवरोह ही और था कि मुझे ही वह कोई सपना आता था; वह मन्त्र था कि यन्त्र था कि तन्त्र था कि सब से स्वतन्त्र था, मैं कुछ नहीं कह सकता।

अब इसे आज काल के गवैये लोग प्रायः और ही रीति से गाते हैं। हमने बड़े बड़े धजाधारियों को देखा कि जो ऋषभ और पञ्चम इसमें वर्जित हैं, गाने के समय उनी के लगाने को वे बहादुरी समझते हैं, और पूछने से कहते हैं कि "खूबसूरती के लिये इन सुरों को भी लगाते हैं" छि,!! क्या आश्चर्य है! उस महा समुद्र ऐसे राग में उनें खूबसूरती का और कोई उपाय न मिला, वर्जित का स्वीकार ही उन खूबसूरती और सुन्दरता का निधान मिला। भला वर्जित ही सुर में कुछ अधिक रस चूता होता तो उन चोर की भांति भागते भागते क्यों छूते? मैं क्या कहूँ। मैंने जो उस समय गाना सुना उस में वर्जित का नाम भी नहीं था और सौन्दर्य जो था, उसका वर्णन करना मेरा क्या, बड़े बड़ों का भी साहस नहीं। अब मैं समझता हूँ कि गान में वर्जित स्वर को लगाना इतनी ही बहादुरी है कि चोरी करना, पर पकड़ में न आना।

मैं उसी गानसूत्र में बँधा बँधा आगे बढ़ा। कुछ ऊँचे चढ़ा। बांई ओर घूमा। आगे आ के देखा कि चारों ओर से लताओं ने एक स्थान को घेर रखा है। और उसी में से आलाप आ रहा है। जब मैं समीप पहुँचा तब मन्द मन्द वीणा का भी नाद सुन पड़ा।

आः ! जब मैं स्मरण करता हूँ तब फिर से मानो उस वीणा की मूर्छनायें मेरी नस नस में फड़कने लगती हैं । आप लोग सभी जानते हैं कि दूध में कैसा सवाद है, परन्तु आप ही से पूछा जाय कि "दूध का कैसा सवाद है सो कहिये" । तो कहिये, आप क्या कह सकेंगे ? वही दशा मेरी थी ।

और समीप आके देखा कि वह एक-बड़ा सा कुञ्ज है । चारों ओर सोने के खम्भे लगे हैं । खम्भों पर भांति भांति की लता चढ़ रही है । ऊपर बहुत सुन्दर गुम्मज सी हो रही है, और खम्भों के ऊपर एक ऐसी विचित्र मणियों के फूल बन रहे हैं कि उन के प्रकाश से दिन हो रहा है । इन मणियों के सङ्ग सङ्ग और भी हरे, नीले, पीले, लाल, नारङ्गी नग जड़े हुए थे । उन की चमकती किरणें, आमने सामने ऊपर ऐसी आपस में घनी हो गई थीं कि मानो किसी ने एक विचित्र प्रकाशमय परदा तान दिया हो ।

मैं उसी लतामण्डल की आड़ में एक स्थान में खड़ा हो गया और छिपा ही छिपा पत्तों की आड़ में से देखने लगा । मैंने देखा कि तीन सुन्दरी स्त्रियाँ बैठी हैं । इन्हीं में एक वीणा में आलाप कर रही है, एक मृदङ्ग की परनें उड़ा रही है, तीसरी इन दोनों के बीच में बैठी गा रही है । तीनों ही एक से एक सुन्दरी थीं पर जो गाती थीं वह प्रधान सी जान पड़ती थीं और जो बजाती थीं वे उसी की सहेली सी समझ पड़ती थीं ।

उस प्रधान नायिका का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ, मैंने सिन्ध से ढाका तक और नयपाल से सेतुबन्ध रामेश्वर तक भ्रमण किया है, पर ऐसा सौन्दर्य मैंने कहीं देखा ही नहीं कि मैं उस की किसी से तुलना करूँ । कोमलता, सुन्दरता, मधुरता, मोहनता और अलौकिकता तो उस के पसीनों की बूँदों से चुई पड़ती थी । बहुधा कवियों की चाल है कि किसी सुन्दरी का वर्णन करना हुआ तो चट कह बैठते हैं कि उस का मुँह चाँद सा था, पर मैं तो समझता हूँ कि उस के मुँह पोंछने के कपड़े का टुकड़ा सा चाँद हो तो हो ।

उस के मुँह को देख फिर चाँद को मन में लाने से यही जान पड़ता था कि इसी से डर के चाँद आकाश में भागा फिरता है, और इस से अपने यश मिट जाने के सोच के दाह ही से उसका कलेजा जल गया है जो आज तक काला झलकता है, और उसी चिन्ता की अधिकता से उसे दई का रोग हो गया है। लोग नायिकाओं के मुँह को कमल सा कह मारते हैं। पर मुझे कवियों की समझ पर हँसी आती थी कि उनमें कमल ऐसा क्या आकार देखा? छि छि! कवि लोगों के कहने अनुसार एक ऐसी मूर्त्ति बनाई जाय जिस में मुँह के स्थान में चाँद या कमल लिख दिया जाय और आँखों के ठिकाने दो मछली, और आँखों के कोनों के बदले दो चोखे तीर बना दिये जायँ, त्योंही कान के ठिकाने सीप, गले के बदले कबूतर, छाती के स्थान पर हाथी का सिर बना दिया जाय, चोटी के ठिकाने मोटी सी काली नागिन, दोनों बाँह कमल की नाल, हाथ कमल, कमर के स्थान एक दम खाली छोड़ दें और यों हीं कमर के नीचे भी अपना जोर लगाते चले जायँ। हम आप लोगों से पूछते हैं, कहिये तो, यह कैसी डरावनी राछसी ऐसी मूरत तयार होगी?

पर बाबा, कवि लोग धन्य हैं। जो चाहैं सो करैं, पर तो भी एक बात में तो कवि लोगों की टाँग के तले हो के निकल जाना पड़ता है कि वे अपनी बोलचाल के बल से जिस के विषय में कुछ कहते हैं उस की झाँकी ही सी करा देते हैं। यदि कोई कवि बसन्त का वर्णन करै तो सचमुच कोयल की कूजन कानों में पहुँच ही सी जाती है और गुलाब की सुगन्ध ही सी आने लगती है, जहाँ किसी कवि ने वीर का वर्णन किया कि दुबले से मनुष्य की भी बाँहें फड़क उठती हैं और हाथ मोंछ पर पहुँच जाता है, त्यों ही जब किसी युवती का वर्णन करते हैं तो एक बेर नपुंसक के भी रोयें सगबगा उठते हैं और आँख के सामने चित्र सा खिंच जाता है।

यह बात दूसरी है, पर मैं तो यह कह रहा हूँ कि वह सौन्दर्य अवर्णनीय था। और देखिये तो, जब इन के वर्णन में बुद्धि कुण्ठित हो जाती है तब जो लोग श्रीराधा, जानकी, पार्वती और लक्ष्मी के सौन्दर्य के वर्णन का बीड़ा उठाते हैं वे कैसे अज्ञ हैं। जगदम्बिका के मुख को जगत् के जूठे चाँद से मिलाना झख मारना है नहीं, तो क्या है। इसी बात में गोस्वामी तुलसीदास जी कालिदास जी को टप गये हैं कि गुसांई जी ने जगदम्बिका के उस रीति के वर्णन में कहीं यत्न न किया और कालिदास ने कुमारसम्भव में भगवती पार्वती का साधारण नायिका की भांति वर्णन किया।

अच्छा आप लोग फिर उसी ठिकाने पहुँचिये। मैं तो पृथ्वी के भीतर उस मन्दिर के पास ही खड़ा खड़ा उछल के कालिदास और गुसांई तुलसीदास जी से भी दो दो बातें कर आया, पर अब आप लोगों को लिये दिये फिर वहीं पहुँचना चाहता हूँ, चलिये।

वहाँ से स्त्रियाँ मुझे नहीं देख सकती थीं। केवल मैं ही उन्हें देखता था। मेरी उस समय क्या दशा हो गई थी, इसके स्मरण से फिर भी मेरे शरीर में रोमाञ्च होता है और पसीने होते हैं। मैं आप लोगों से क्या कहूँ, किसी दूसरे ने मेरी दशा देखी होती तो वह कुछ कह सकता, मैं क्या कहूँ, मैं तो बेचेत था। गान पूरा होने पर उन स्त्रियों ने परस्पर कुछ बातचीत की थी पर मैं भली भांति न समझ सका। यह कह सकता हूँ कि उनकी भाषा संस्कृत से मिलती थी। अन्त में मुझ से न रहा गया, यही चित में आया कि दौड़ के इन के गले में लिपट जाऊँ, पर साथ ही यह सन्देह हुआ कि कहीं ये देवी हों और भस्म कर दें तो! फिर यह भावना हुई कि अच्छा चलो, इन से कुछ बातें तो कर लें। उस समय मेरा हृदय कैसा कभी इधर कभी उधर झुकने लगा, इसे मैं क्यों कर बताऊँ। आप ही लोग समझ लें कि जो कभी किसी पराई स्त्री से नहीं बोला है और बोलना तो जहाँ तहाँ, जिस ने भर आँख

परस्त्री का मुँह भी कभी न देखा, वह कैसे एकाएकी ऐसी तेजस्विनी रूपवती सुन्दरी से बोल सका है और जिस के वेग से शरीर की सुध न रही, उस प्रबल सात्त्विक भाव को रोकना भी कैसा कठिन है।

उस समय मेरी छाती धड़क रही है कि अचानक किसी ने पीछे से मेरे कन्धे पर अँगुली गोदी। फिर के देखूँ तो वही योगिराज बाबाजी खड़े हैं और हाथ के संकेत से मुझे चुपचाप बुला रहे हैं। मैं डर गया कि इन स्त्रियों पर लुभा रहा हूँ और बाबा जी मुझे देख रहे हैं। कुछ आगे चल बाबाजी के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम कर, खड़ा हो, उनकी शोभा देखने लगा। जिस आँख के आगे क्षण भर पूर्व वह दुर्बल अंगवाली अबला थी, उसके आगे ये दृढाङ्ग महाराज बाबाजी उपस्थित हुए। कहाँ तो मेरे सामने वह मूर्त्ति थी कि नील कमलें ऐसी आँखें और काले काले व्याल वाल ऐसे घुघुरारे केश देख पड़ते थे और कहाँ ये जलते अङ्गारे ऐसे धकधकाते नेत्र और पीली जटा और डाढ़ी फराने लगी। क्या कहूँ। जैसे धड़ से नाटक का पड़दा बदल जाय, वैसे ही शृङ्गाररस की सामग्री को हटा शान्तरस की सामग्री मेरे आगे जम गई। बाबाजी महाराज ने कुछ हँस के कहा कि ये विद्याधरी हैं। ये चाहें तो तुम्हारे ऐसे को अभी पशु अथवा पक्षी बना दें इसलिये तुम्हारे ऊपर दया कर मैं आया हूँ। यह काशी का किनारा है। यहाँ करोड़ों देवी देव नित्य आते और जाते हैं, तुमने यह क्या सौन्दर्य देखा? यहाँ ऐसी ऐसी देवी आती हैं कि जिनके सामने यह दासी ऐसी जान पड़े। तुम जानते नहीं यह आनन्द वन है, यहाँ के आनन्द का क्या ठिकाना। मैंने कहा महाराज! मैंने तो ऐसा अपूर्व नाद आज तक कभी सुना ही नहीं और जैसी चमचमाहट और शोभा आज यहाँ देखी, ऐसी शोभा भी न देखी और न देख सकूँगा। बाबाजी ने कहा, इधर आओ, तुमें अपूर्व नाद और अपूर्व चमचमाहट दिखलावें। मैं

उनके साथ हुआ, थोड़ी सी दूर चल, एक कुंज से स्थान में घुस, एक उत्तम स्थान में आप भी बैठ गये और मुझे भी बैठाया। बस मुझसे पद्मासन बँधाया, कहा कि "सीधी खड़ी पीठ करके बैठो और भौंह के बीच दृष्टि करो" मैंने कहा; "महाराज ! मेरी आँखें तिलमिलाती हैं, भौंह के बीच तो नहीं ठहर सकतीं" तब उनने कहा कि "अच्छा, हम ठहरा देते हैं। तुम जो प्रकाश देख पड़े, उसी के मध्य में स्थिर दृष्टि से देखो और जो झीनी २ धुन सुन पड़े, उस पर ध्यान देके एकाग्र हो कर सुनो"। बस बाबाजी ने अपने दोनों हाथ के अंगुठे मेरी आँखों में लगा दिये। अब उनके हाथ लगाते ही मैंने क्या क्या आनन्द देखे सो क्या कहूँ" इतना कहते उसकी आँखों में कुछ जल सा आ गया और वह दुपट्टे से पोंछने लगा। तब सब श्रोताओं ने कहा कि "हाँ, हाँ, कहिये क्या देखा ? आपको हम लोग बड़ा कष्ट देते हैं सो क्षमा कीजिये। क्या करें, बिना सुने रहा नहीं जाता है।" तब उस राजपुतानी जवान ने फिर कहना आरम्भ किया कि "सुनिये उस समय पहिले तो मेरी आँखों के आगे धुँआ सा उड़ने लगा, फिर उसका चक्कर बँधने लगा। फिर उसी में तेज बढ़ने लगा, फिर वह चक्र इतनी प्रबलता से घूमने लगा कि उसके आगे चरखी मात, तब वह आखों के सामने एक चमकीला पूर्ण चन्द्र ऐसा हो गया, चारों ओर से सहस्रों बिजुलियाँ सी चमकने लगीं, सैकड़ों तारे खिल गये, चन्द्-मण्डल में एक छेद देख पड़ने लगा, वह बड़ा हुआ, तब उसमें से सैकड़ों मणि और रत्नों की चमक आने लगी, इधर कानों में पहले तो मधुर झिल्ली का सा झङ्कार आरम्भ हुआ, फिर घड़ी, शङ्ख, भेरी, बंसी, वीणा आदि की ऐसी मधुर मधुर धुनि सुन पड़ने लगी कि वह विद्याधरियों का गान भी उनके आगे फीका पड़ गया। आगे के रहस्य का वर्णन मैं नहीं कर सक्ता, क्षमा कीजिये। मैं नहीं जानता, कितनी देर तक मैं उसी में गड़प्प था। फिर जोगी बाबाजी के जगाने पर जागा। तब महाराज ने एक मन्त्र

मुझे बतलाया और कहा कि इस से तुमारी शक्ति बढ़ेगी. जब चाहोगे तब राजयोग का आनन्द मिलैगा।

अनन्तर बाबाजी ने कहा कि "चलो, तुम्हें थोड़ी काशी की सैर दिखावें"। मैंने कहा "महाराज! मेरे वे काले गोरे साथी कहीं उठ के चले तो न जायँगे?" उनसे कहा "नहीं नहीं, जब तुम आके जगाओगे तब जागैंगे"।

तब मैं उन के साथ हो लिया। वे मुझे संग लिये उस महा तेजोमय मण्डल में घुसे। जैसी कनकमयी भूमि का मैं पहले वर्णन कर चुका हूं वही भूमि, पर तेज कुछ अधिक हो चला। अब कहीं तो देखा कि देवी देव बैठे गान वाद्य कर रहे हैं। कहीं मुनि समाधि में मस्त बैठे हैं। कहीं मणिमय देवमूर्त्ति है। कहीं सरोवर, महल और गुम्बज बने हैं। आगे बढ़ के एक बड़ा भारी गहरा स्थान देखा जहाँ सहस्रों योगी ऋषि और महात्मा तप कर रहे हैं। मेरे पूछने पर बाबाजी ने कहा कि यह जैगीषव्य मुनि की गुफा है। काशी खण्ड में इस का बहुत वर्णन है। कुछ और पच्छिम की ओर बढ़ते ही एक बड़ा हाहाकर सुन पड़ा और रोने और चिल्लाने के हल्ले से मेरे कान फटने लगे। मैंने घबरा के पूछा कि महाराज यह क्या है? बाबा जी ने कहा डरो मत, चले चलो, दिखलाते हैं। मैंने कितना ही कहा कि मेरी छाती धड़कती है, पाँव थरथराते हैं, आँखें तिरमिराती हैं, पेट में साँस नहीं समाता, महाराज! आप कहां ले चले? क्या बात है, कहिये तो?" उनने कहा "बेटा! तुम क्यों डरते हो? चलो देखो, काशी के पापियों को भैरव जी कैसी यातना दे रहे हैं! तुमें बड़ा डर लगता हो तो तुम ऐसा काम न करना जिस में पाप हो, नहीं तो उस समय तो अच्छा लगेगा पर जब नर्क में धड़ाधड़ बैठने लगैंगी तब ऐसे ही चिल्लाना होगा।"

आगे जाके मैंने देखा कि सैकड़ों बड़े २ पर्वताकार कोल्हू चल रहे हैं और उन में ऊख की गंडेरी की भांति सहस्रों पापी

दरकचे जाते हैं। पापियों का शरीर रबर ऐसे पदार्थ का बना है कि जब कोल्हू दबाता है तब तो चिपटे हो जाते हैं पर कोल्हू हटते ही फिर फूल के ज्यों के त्यों हो जाते हैं। चारों ओर खड़े कितने ही भैरव के गण कांटेवाले डण्डों से उने मारते भी जाते हैं पर एक बेर तो उन के शरीर में उन कांटों के छेद हो जाते हैं और फिर शीघ्र ही वे छेद भर जाते हैं। यह भी देखा कि कितने ही पापियों पर एक ही बेर कोल्हू घुमाया जाता है, कितनों ही पर दो बेर, कितनों पर दस बेर इत्यादि। बाबाजी ने कहा कि "यही भैरवी यातना है, कितने ही भारी पाप हों पर दो घड़ी के भीतर ही यह यातना शुद्ध कर देती है। जो काशी में पाप करैं उनको यमदूत नहीं पकड़ सकते, उन का यही नर्क है। पर हाँ, अन्त में मोक्ष होने में सन्देह नहीं।"

फिर बाबाजी ने कहा कि "चलो तुम्हें भारतवर्ष की मूर्त्ति का दर्शन करावैं"। मैंने मनीमन कहा कि "क्या कोई चित्र-पटी दिखलावैंगे क्या?" वे मुझे एक मन्दिर में ले गये और बोले कि "भारतवर्ष की जय"। मैंने भी उन के साथ जै में जै मिला दी पर फिर आंख फाड़ भली भांत देख कहा कि "महा-राज! यह तो चार भुजा, पीताम्बर, मणिमय मुकुट और वनमाला से शोभित नारायण की मूर्त्ति है, भारतवर्ष की आप कैसे कहते हैं?" उनने कहा 'भैया! जैसे इस के अवलोकन से नारायण का स्मरण होता है, वैसे ही इस के देखने से पूर्व भारत का भी स्मरण होता है। देखो, किसी समय भारतवर्ष सुन्दर शस्यों से श्याम बना रहता था, और भांति भांति के बनों की माला से शोभित रहता था, और मणि और मोतियों का आकर था, सो इस मूर्ति को देखने ही से यह भाव हृदय में खचित हो जाता है। शङ्ख देखते ही भारत की नादविद्या का स्मरण होता है, चक्र देखते ही भारत की चक्रवर्त्तिता आंखों के आगे आ झलकती है, गदा देखते ही वीरता भासित होती है

और पत्र देखते ही, यह कैसा पवित्र था, कैसा निर्मल था, कैसा शिरोधार्य था और इसकी सुगन्ध कैसी दूर दूर छाई थी, इन सब बातों का चित्र सा बँध जाता है। देखो, ये चारों भुजा प्रत्यक्ष दिखलाती हैं कि यहाँ चार वेदों का राज्य था, चार वर्ण और चार आश्रमों की उन्नति थी, और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चारों इसके करतल में थे। यही मूर्त्ति सब की रक्षक थी और दया धर्म आदि की गुणों से भूषित थी।' यह सुनते ही मैं चुप रह गया और मेरी आँखों के आगे भारतवर्ष की पूर्व अवस्था झलक गई और रामचन्द्र से पृथ्वीराज तक कथा चमक गई। मुझे सुनसान देख बाबाजी ने कहा कि चलो, भारतवर्ष की एक मूर्त्ति और तुम को दिखलावें। मैं उन के साथ हो लिया वे एक दूसरे चमचमाते मन्दिर में घुसे और फिर बोले कि 'भारतवर्ष की जय'। मैंने भी साथ साथ जै कहा और देखा कि वहाँ एक भव्य महादेव की मूर्त्ति है। उन की जटा बिखरी थी, भस्म सर्वाङ्ग में लगी थी, शरीर पर कपड़ा एक न था, तीसरा नेत्र भभक रहा था, भौंहें चढ़ी थीं, गले में मुण्डों की माला थी, अङ्ग में साँप लपटे थे, पास त्रिशूल गड़ा था, उसी में डमरू भी टँगा था।

मैंने बाबाजी से कहा कि महाराज यह भी तो महादेव की मूर्त्ति है, भारत की तो नहीं है। तब बाबाजी ने कहा कि बेटा! जैसे किसी समय भारत विष्णुरूप था वैसे ही आजकाल शिवमूर्त्ति हो रहा है। देखो जिस भारत को किसी समय सोने के सिंहासन थे, वह आज मसान की धूल में पड़ा है, जिस भारत को हीरे पन्ने से अवसर नहीं मिलता था वह आज राख लपेटे है। जिस भारत के ललाट पर केसर का टीका था उसी के ललाट में अग्नि की ज्वाला भभकती हैं। हाय! जो भारत पीताम्बर धारी था वह आज नङ्गा हो रहा है। हाय! समुद्र का मन्थन कर सब ने रत्न लिये और इसे विष दिया। पर अभी तक किसी का सामर्थ्य न हुआ कि इस की आत्मविद्या का हरण करे।

यह भारत अब भी शान्तरस की मूर्त्ति हो, वैराग्य और योग का स्वरूप हो, अभी तक आत्माराम हो रहा है। यह कितना ही अमङ्गल स्वरूप हो, पर सब के लिये यह मङ्गलमय है। हे भारत ! तुम्हें प्रणाम है ! बाबा ! किन की मुण्डमाला तुम्हें अच्छी लगती है, किन पर आँखें लाल हैं, किन पर भौंहें चढ़ाई हैं, किन पर क्रोध कर त्रिशूल पास रक्खा है ? हमें तो यह देख डर होता है, शिवरूप और विष्णुरूप दोनों एक हैं, पर बाबा ! हमें इस मूर्त्ति से डर होता है, हमें तो तुम उसी मूर्त्ति से दर्शन दिया करो कि हमारी आँखों के आगे केसर की खौर रहे, फूलों का सिरमौर रहे, घूँघरी अलक रहे, कुण्डल की झलक रहे पीताम्बर का फहराना रहे, बनमाला का लहराना रहे, छतरों की गमक रहे, भूषणों की चमक रहे, वंसी की बजन रहे, और नये नये वेष की सजन रहे।

उनके यों कहते कहते आँख में आँसू आ गये और मेरा भी जी भारतवर्ष और श्रीकृष्ण दोनों के स्मरण से पागल सा हो गया और मैं भी आँसू पोंछने लगा।

फिर मेरे और बाबाजी के बहुत सी बातें हुई और उन के साथ मैंने बहुत काशी की यात्रा की सो कहाँ तक कहूँ। अन्त में मैंने बाहर निकलने के विषय में पूछा तो उनने कहा कि भगवान की प्रेरणा से बहुत लोग तुमारे निकालने के यत्न में हैं। तुम चित्रकूट के आगे पहुँचोगे तब एक स्थान में ऊपर से लटका एक लंगड़ पाओगे, उसी पर चढ़ लेना।

मैंने अपना सन्देह यह भी उनसे पूछ लिया कि "महाराज यह क्या कारण है कि यह अंगरेज तो हिन्दू धर्म पर इतना प्रेम रखता है और यह बङ्गाली भ्रष्ट हो रहा है"। उनने कहा कि बच्चा ! सब में सब प्रकार के मनुष्य होते हैं ! अंगरेज और मुसल्मानों में हजारों हिन्दुओं में हजारों हिन्दू धर्म के पक्षपाती होगये और हैं और हिन्दुओं में भी हजारों पतित हैं, इस का क्या करोगे ?

बङ्गाल में तो ऐसे ऐसे प्रेमी और नेमी हो गये हैं और अब भी हैं कि पश्चिमोत्तर उनके आगे पानी भरे, पर यह दईमारा लड़कपन ही में किसी के भरमाने से ब्रह्मसमाजी हो गया, सो वैसी ही मण्डली में बैठता, वैसे ही भावों से भर गया है। यह तुम जानते ही हो कि जिसके सैकड़ों पुरुषों में किसी ने मद्यपान न किया और गोमांस का नाम तक न लिया, वह यदि हठ कर मद्य ढलकाने लगे और गोमांस से उदर भरे, तो उस का शरीर कब तक पुरानी दशा में रहेगा, और वह कब तक पागल न होगा। बस, इस का भी उन्हीं दुराचारों से कलेजा जल गया है, तब इसे क्या पूछते हो। ऐसे पुरुषों से अंगरेज मुसल्मान् सब चिढ़ते हैं।

यों बातें करते करते उन ने मुझे उन मुतक्कड़ों के पास पहुँचा दिया। मैं उन के घुर्राटों पर हँस, दहिनी ओर फिर, ज्यों हीं बाबाजी से कुछ कहना चाहता हूँ कि बस बाबाजी नहीं।

तब मैं थोड़ी देर तो चकपकाता रहा और योग के विचित्र प्रताप पर आश्चर्य करता रहा; अनन्तर उन दोनों को झंझोड झंझोड के जगाया। उनको ऐसी घोर निद्रा थी कि वे इस जगाने पर भी बड़ी देर तक गुम साधे अचेत से बैठे थे और लाल लाल आँखें मल इधर उधर देखते थे। बंगाली बाबू मुझे झड़कार कर बोले "केनो हाम को एतना जोल्दी जागाता है" [क्यों हमको इतनी जल्दी जगाते हो ?] और पैर फैला धड़ से फिर पड़ रहे। पर साहब ने अपने खीसे से निकाल घड़ी देखी और "ओ माइ गाड" [अरे परमेश्वर !] कह के कहा कि "अब किटना सोने माँगटा ! छ घण्टा तो सोआ" फिर साहब ने उठ, मुंह धोआ, कुल्ला किया। बंगाली बाबू ने भी आँय बाँय शाँय करते उठ, कुछ मुँह मुँह धोआ। तब तक साहब ने अपनी लटपटाती बोली में कहा "कुछ और खा पी लेना चाहिये। फिर कौन जाने ऐसा अवसर मिले कि नहीं, यहाँ जल मेवे सब कुछ हैं।" यों कह साहब ने थोड़े अंगूर तोड़ लिये और खीसे से बिसकुट निकाल खाहा

करना आरम्भ किया। बंगाली राम भी उन्ही के पास आ बैठे और उन्ही से एक टुकड़ा माँग कर मर्र करने लगे। मैंने मनी-मन कहा कि ठीक है, जब ब्रह्मसमाजी ही हुए तो फिर खाने पीने का बन्धन कहाँ रहा?

मैंने तो थोड़े से मेवे अपने खीसे में रख लिये और इनके निमट लेने पर हम तीनों फिर आगे चले।

साहब ने कहा कि चलो इस प्रकाशमय भूमि में चलें, यहाँ बड़े बड़े आनन्द देख पड़ेंगे। हम तीनों उसी ओर चले। ज्यों हीं फूलों की सुगन्ध लेते, लताओं का आपस में लिपट जाली बनाना देखते, भौरों के मधुर गुंजार सुनते, आगे बढ़े कि अचानक एक काला ज्वान धम्म से कूद के हम लोगों के सामने आ खड़ा हुआ। आः! उसका शरीर लगढग दस हाथ लम्बा था और तीन साढ़े तीन हाथ चौड़ी छाती थी, कटि पर बाघ का चमड़ा लपटा था, भूरे भूरे लम्बे घटा ऐसे बाल पीठ की ओर छाये थे, लाल लाल अंगारे ऐसी आंखें चमकती थीं, सिर छाती और बाहों पर बिभूत लगी थी, गले में मोटे मोटे रुद्राक्ष की माला छटक रही थी और हाथ में एक भारी मुग्दर था। देखते ही हम लोग सन्ना गये और बंगाली बाबू तो पछाड़ खा औंधे गिरे। तब तक उस पुरुष ने कुछ संस्कृत मिले शब्दों से कहा कि "डरो मत। इधर काशी है और इस मार्ग से केवल दिव्य देह अथवा मुनि लोग अथवा उन के साथी लोग ही जा सकते हैं, तुम लोग नहीं जा सकते, फिरो"। उस ने कितनी ही कोमलता से कहा कि जिस में हम लोग भय से मूर्छित न हो जांय, पर तो भी वह मूर्ति ऐसी भयङ्कर थी और स्वर ऐसा भयानक था कि हम लोगों के रोएँ खड़े हो गये और साहस, वीरता, निर्भयता, कौन जाने किधर घुसड़ गये।

वह चटपट ही हम लोगों को समझा, उछला। उस की उछल ही देख हम लोगों की आँख झप गईं। फिर आँख खोल देखा

तो वह शिव का गण न जाने किधर अलालोप हो गया। अब हम लोग उस डरपोक जीव को सचेत करने में लगे। कभी नाक दबाई, कभी पानी छींटा, कभी फल सुंघाये, कभी उठाया, कभी कोलाहल किये। अन्त में बिचारा हवसता, हाँफता, डरता, गिड-गिडाता, घिघियाता, सचेत हुआ।

क्या समझौवल बुझौवल हुई सो सुन के क्या कीजियेगा, हम लोग दक्षिण चले। थोड़ी दूर चलते ही देखा कि उसी प्रकाशमय भूमि में एक नदी बड़े वेग से बह रही है। उस के तट पर आये। मैंने नील कमल कभी न देखे थे पर वहाँ देखा कि नदी के दोनों किनारों को नील कमलों ने सारा नीला कर रखा है। नील कमल से लोग आँख की उपमा देते हैं, सो मैंने उस समय देखा कि सचमुच आँख से मिलान ही के लिये विधाता ने उन की सृष्टि की है। कुछ कुछ वायु लगने से वे हिलते भी जाते थे। ऐसा जान पड़ता था कि मानो वह नदी अपने चञ्चल नयनों से आश्चर्य में भर, हम लोगों को देख रही है कि ये तीनों तीन भांति के मनुष्य इस भूगर्भ में कहाँ से आये? पर भाई! एक बात तो कहे विना मैं रह नहीं सक्ता। वे कमल कितने ही सुन्दर थे पर उस विद्याधरी के नेत्रों का स्मरण करने से तो मुझे यही जान पड़ा कि मानों उनी रसीले छबीले चटकीले भड़कीले लोचनों के आगे लज्जित हो ये नील कमल जल में डूब मरने के लिये इस नदी में घुसे हैं। अथवा उनी की समता पाने के लिये ये जल में एक पैर से खड़े हो तप कर रहे हैं। मुझे यही भासित हुआ कि ये नायिका के रस भरे नयनों के विजय के लिये, पराग के बहाने केसर का तिलक लगा, भ्रमरों के बहाने रुद्राक्ष माला ले, उन के गुञ्जार के बहाने प्रणव के जप का अनुष्ठान कर रहे हैं और इसी के शीघ्र सिद्ध करने के लिये जल में आकण्ठ मग्न हो रहे हैं। वहाँ सूर्य्य के प्रकाश का जाना तो सम्भव ही नहीं था, पर तो भी उस स्थान में स्वयं सिद्ध ज्वालामुखी की ऊष्णता के कारण वे

आप ही खिले थे। हम लोगों ने चाहा कि घुस के पार हों पर जल बहुत ही वेग से बहता था और गहरा भी अनुभव में आया। इसलिये किनारे ही किनारे टहलने लगे। एक स्थान में देखा कि एक सुनहरे पत्थर में हरे हरे पन्ने के अक्षरों में लिखा है कि

"असिर्नाम नदी पुण्या, असिः पातककर्त्तने !
असिपत्रं प्रदग्धासि, असि चेत् कृतमज्जनः।

[यह असि नाम की पवित्र नदी है जो पापों को काटने के लिये तलवार के समान है। अगर आप ने इसमें स्नान कर लिया है तो आप ने असि-पत्र (एक नरक) को नष्ट कर दिया (अर्थात् इसमें स्नान करने से असि-पत्र नामक नरक का भय नहीं होता।]

साहब ने तो घड़ से इसे भी अपनी नोट बुक में लिख लिया और कहा कि देखिये ! ये भी उसी धरन के अक्षर हैं ! जहाँ तक पता लगा सब से पुराने अक्षर ये ही जान पड़ते हैं ! मैं कुछ संस्कृत समझ ही सकता था। मैंने चट उसका अर्थ साहब को सुनाया। साहब ने कहा—ठीक है, तब तो स्नान करना चाहिये। तब मैंने और साहब ने तो स्नान किया पर वह आलसी जीव ज्यों का त्यों ही खड़ा रहा। हम लोगों ने स्नान किया, मैंने तर्पण भी किया पर वेग इतना अधिक था कि पौर के भी पार जाने का किसी का साहस न हुआ। फिर कपड़े पहर, इधर उधर दौड़ भाग कर उद्योग कर रहे थे कि देखा, एक स्थान में पाट बहुत कम चौड़ा है और नदी के बीच में तीन चार प्रकार के पेड़ ऐसे लगातार हैं कि एक डाल से दूसरे की डाल का लगाव इस पार से उस पार तक हो रहा है। हम लोग चट कमर कस, बाँह चढ़ा, उसी पर चढ़े और बड़े यत्न से घण्टों में इस पार से उस पार पहुँचे। आश्चर्य यही हुआ कि वह बङ्गाली भी रोते झींखते पार हुए। नहीं तो हम लोगों को आशा न थी।

हम लोग दक्षिण चले जाते थे। यद्यपि आगे उतना भयानक उजाला न था तो भी अँधेरा भी न था। ऊपर से जल दौड़ने की

ढलढल ध्वनि भी आती थी। जान पड़ता था कि गङ्गा की धारा दहिने हाथ की ओर छोड़, हम लोग तीर तीर चले जाते हैं।

बड़ी दूर चलने पर फिर एक शान्त और अपूर्व सा आश्रम देख पड़ने लगा। वहाँ देखा कि एक स्थान में मोर नाँच रहे हैं और बड़े बड़े साँप सामने बैठ, फन उठा, उनका नाच देख रहे हैं। मैंने साहब से पूछा 'यह क्या ? इनका तो स्वयं सिद्ध बैर है, फिर इनकी मित्रता कैसी !" साहब ने कहा "मुनियों के आश्रम का ऐसा ही माहात्म्य है कि वहाँ जाने से चित्त शुद्ध हो जाता है, सो इन ने भी अपने हृदय का द्वेष छोड़ दिया है।" और आगे बढ़ के देखा कि पृथ्वी के भीतर समाधि स्थान सा है पर उसका द्वार एक भारी शिला से बन्द है। उसी के समीप एक पत्थर के खम्भे में प्राचीन अक्षरों से यों लिखा था।

"खत्रिखत्रि (२०३०) मिते वर्षे यौधिष्ठिरसमाह्वये।
प्राप्ते वसन्तसमये योगी भर्तृहरिः स्वयम् ॥
गोरक्षनाथनिर्दिष्टयुक्तिभिः संयतेन्द्रियः।
स्थानेऽस्मिन् कलयामास समाधिं व्याधिनाशनम्" ॥

[युधिष्ठिर सं० ३०३० में, वसन्त काल में, गोरखनाथ के उपदिष्ट मार्ग से, संयतेन्द्रिय हो कर इसी स्थान में योगी भर्तृहरि ने व्याधिनाशिनी समाधि ली।]

इस लेख को भी साहब ने उतार लिया। मैंने भी कहा कि ठीक है, चरणाद्रि 'भर्तृहरि का स्थान प्रसिद्ध है। सो जान पड़ता है कि हम लोग सचमुच चरणाद्रि के नीचे पहुँचे हैं और यह अवश्य भर्तृहरि ही की समाधि है। साहब ने मुझ से कहा कि "देखो, इस संवत् की ओर आँख फेरो। यह २०३० युधिष्ठिराब्द है और भर्तृहरि के अनन्तर विक्रम संवत् चला है उसे भी १९३९ बरस बीते। जोड़ '४९६९' चार हजार नौ सौ उनहत्तर बरस हुए। इससे अधिक वर्ष युधिष्ठिर राज्य को बीते हुए और युधिष्ठिर के समय में भारत की उन्नति का सूर्यास्त हुआ। युधिष्ठिर अन्तिम

राजा हुए हैं जिन ने राजसूय यज्ञ किया और जो चक्रवर्ती कहा सके। तब देखो, कैसा आश्चर्य है कि पाँच सहस्र वर्ष ही से तो भारत की दुर्दशा का दिन आया है जिसे यहाँ के मुनि लोग पहले ही से कहते आये हैं कि कलियुग आवैगा और आज कल के हिस्ट्री के लिक्खाड़ और तुम्हारे देश के अंगरेजिहा विद्वान् एकाएकी बक उठते हैं कि भारत में पहले केवल जङ्गली लोग रहते थे और लगढग चार हजार वर्ष हुए कि ऐरियन् लोग यहाँ आये, जिनके वंश में सब आर्य जाति हुए।

छि छि !! धिक् ऐसी विद्या और ज्ञान को; कि लोग जीती मक्खी निगलते हैं। एक विलायती भट्ट लिखते हैं कि चार हजार वर्ष पहले लोग लिखना भी नहीं जानते थे, और आपके देशी कितने कोट पटलूनधारी उसे वेदवाक्य से बढ़ के माने लेते हैं। पर ४६६६ बरस का लेख तो यह आपके सामने ही है। और युधिष्ठिर के समय में वेदव्यास थे जिनने १८ पुराण औ इतिहास बनाया, जिन के ग्रन्थ गणेश जी लिखते थे। और जिन ने पुराणों में सैकड़ों जगह लिखने की चर्चा की है औ कहा कि पुराण लिखा हुआ। जिसके घर में धरा रहे, उसके अरिष्ट टलते हैं। देखो, उस समय लिखापढ़ी की कितनी चाल थी। फिर देखो, सब पुराण और उपपुराणों से यह सिद्ध है कि रामावतार कृष्णावतार के बहुत ही पहले हुआ। यहाँ तक कि रामावतार के समय में जो चन्द्रवंशीय राजा थे उनके वंश में अनेकानेक राजा हो चुकने के अनन्तर वसुदेव भये हैं और उनके यहाँ श्रीकृष्ण प्रगटे हैं तो कृष्णावतार के अति पूर्व रामावतार हुआ है इस में सन्देह हैं, फिर देखो रामायण श्रीरामचन्द्र के सामने ही बनी है और लवकुश ने उनी को सुनाई है। उसी रामायण में लेखों की कथा है सो यहाँ तक कि नामाङ्कित अँगूठी भी उस समय होती थी। तब यह कैसी वज्रमूर्खता की बात है कि कह बैठना कि पहले यहाँ मूर्ख थे और यहाँ के निवासी लेख तक नहीं जानते थे।

यह सुन के मुझे भी आश्चर्य हुआ कि "यह अङ्गरेज हो के हमारे पक्ष का प्रतिपादन करता है और कितने ही छोकड़े हमारे देशी हो के, अङ्गरेजी पढ़ के बिगड़ते हैं जिसके उदाहरण में वह बङ्गाली मौजूद है"।

कहाँ तक कहैं, हम लोग यों ही बातचीत करते कुछ दक्खिन घूम पर, पच्छिम घूम गये। उस भूमि ही को देखने से जान पड़ने लगा कि चारों ओर पहाड़ हैं। वहाँ कहीं तो अँधेरा हो जाता था, कहीं चलते चलते ऊपर से थोड़ी खुली भूमि आ जाती थी, जहाँ सूरज की घाम भी लहक उठती थी, कहीं अग्निवृक्षों के उजाले से दूर तक के स्थान की पीली दूबैं चमकती थीं, कहीं पहाड़ों की खान से चमाचम करते हीरे पन्ने खनखना रहे थे और अग्निवृक्षों की चमक से चौगुने चमक रहे थे।

आगे बढ़ के देखा तो फिर एक फूटा टूटा बाड़ा सा देख पड़ा। अग्निवृक्षों ने उजाला कर रक्खा था। हम लोग भीतर घुसे। मत पूछिये। वहाँ बड़े बड़े फाटक और बड़ी बड़ी कोठरियाँ देखीं। पर वे सब बहुत टूटी फूटी थीं। एक फाटक पर पत्थर के चट्टान में यों लिखा था।

"एष मिथ्यावासुदेवकोषो यादवलुण्ठितः"

[यह नकली वासुदेव का, यादवों द्वारा लूटा हुआ खजाना है]

यह लिखावट भी उन्ही अक्षरों में थी। साहब को तो लिखावट बिना उतारे चैन नहीं। चट उनने अपनी नोट बुक में उतार ली और कहने लगे कि धन्य थे भारतवर्ष के राजा, जो इतने यत्न से अपना खजाना रखते थे और धन्य थे उनके जीतनेवाले जो उस भूमि के भीतर छिपे हुए को भी ले जाते थे। फिर हम दोनों बड़ी देर तक जयपुर के खजाने के विषय में बातचीत करते रहे, जिसका मीणा जाति के हाथ में रहना प्रसिद्ध है।

आगे बढ़ के देखा कि एक बड़े टीले पर एक बहुत भारी देवमूर्त्ति है। मैंने प्रणाम किया और मेरे साथ ही साथ साहब

ने भी प्रणाम किया पर वह डरपोक मानुष कोरा मुसकिरा के खड़ा रह गया। जब साहब ने उसकी ओर देखा तो बोला कि "शाहब ! तोम भी फ़ूलिश हो गया, पत्थर को साल्यूट् करता है।" साहब ने उस को अंग्रेजी में बड़ी देर तक बड़ी उक्ति युक्ति से समझाया तब सिर नीचा कर के चुप रह गया और धीरे धीरे बुड़बुड़ा के बोला "एरा निजेई तो आमादिग के नाश्तिक करे फेले छे आर निजेई एखुन ज्ञानोपदेश कोच्चे, कि आश्चर्जो, जे इंग्राजि रोग शेई इंराजि औषध" [इन लोगों ने खुद ही तो हम लोगों को नास्तिक बना डाला है और खुद ही अब ज्ञान दिखाते हैं। क्या आश्चर्य है ! अंगरेजी रोग भी अंगरेजी ही दवा भी] साहब ने उस मूर्त्ति को भली भांति देखा, भुजा गिन कहा कि यह अष्टभुजी देवी हैं। पुराण के अनुसार ये श्रीकृष्ण की बहिन हैं, यशोदा के गर्भ से ये जनमी थीं।

हम लोग यों अनेक बातचीत करते हुए वहां से पच्छिम चले। दहिने हाथ की ओर जल के बहने की ध्वनि कुछ कुछ सुन पड़ती थी। अब बहुत नई नई बातें कहाँ तक कहैं, कहीं बैठते, कहीं उठते, कहीं सोते, कहीं जल पीते, सीधे पच्छिम चल पड़े। वे लोग कहीं बिसकुट और फल आदि खाते भी जाते थे पर मुझे तो भूख ही नहीं लगती थी।

कई कोस चले आये तब फिर चमकती भूमि मिलने लगी। और आगे बढ़ के देखा, तो एक बड़ा भारी फैलाव का स्थान देख पड़ा। आगे चले। अग्निगुच्छों ने वह उजाला कर रखा था कि दिन हो गया था। हम लोग और समीप आये। वहाँ देखा कि ठौर ठौर में ऊपर के पत्थरों में से छन के बूँद बूँद पानी चू रहा है। पर बड़ा आश्चर्य यह देखा कि कहीं तो बूँदों में प्रकाश पड़ने से नीलमणि की सी झलक होती थी और कहीं हीरे की सी। पानी पृथ्वी में गिर पड़ने पर दोनों एक ही प्रकार का जान पड़ता था। पर अलग अलग गढ़े में भर जाय तो एक में कुछ

श्यामता पाई जाती थी। हम लोग उन प्यारी प्यारी बूँदों की शोभा देखते आगे बढ़े तो देखते क्या हैं कि कहीं कहीं ऐसा भी पानी चूता है जिस पर चमक पड़ने से माणिक्य ऐसी प्रभा देख पड़ती थी, मुझे यह देख आश्चर्य हुआ। साहब से पूछा तो उनने भी कहा कि कुछ आश्चर्य नहीं। तुमने कभी किसी मजलिस में झाड़ों के लोलकों पर आँख फेरी होगी तो देखा होगा कि, यद्यपि ये लोलक साफ काँच के होते हैं तो भी कोई कभी लाल चमक जाता है और कोई कभी नीला चमक जाता है। बस, ठीक वही बात है कि ये स्वच्छ बूँदें रङ्ग बिरङ्गी जान पड़ती हैं। तब मैंने कुछ घूम फिर के कहा कि वह कारण तो यहाँ नहीं हो सकता क्योंकि झाड़ के लोलकों के रङ्ग तो थोड़ा आगा पीछा और हेर-फेर होने से बदल जाते हैं पर इन बूँदों में जो जिस रंग की है वह उसी रङ्ग की है, बदलती नहीं। हम दोनों और भी चकित हुए और सोचते विचारते इधर उधर टहलने लगे।

तब तक वह ब्राह्मो बङ्गाली दादा रे! दादा रे कह, एक दम चमक उठा। हम लोगों के पूछने पर बोला कि "मोल्लैम् रे दादा! चुरुट्टी एके बारे ई खेते गेछि"। साहब ने हँस के कहा "अपना काचे चुट्ट आचे" [आप के पास चरुट है ?] वह बोला "आज्ञे हाँ, एई एई एई जे" [जी हाँ, यह, यह,यह रही।] बस खीसों को ठीक बजा जामे के खीसे से एक वत्तीबटा बिलाती चुरुट् निकाल ही तो लिया। साहब बहादुर ने अपनी बिजलीवाली लालटेम खोल क्या जाने कौन कौन से चक्कर घुमाये कि वह चुरुट् जल पड़ा और बङ्गाली बाबू उसे दाँतों से पकड़, ओठ पर ओठ जमा, फूँ फाँ करते, भकाभक धुआँ छोड़ते, धीरे धीरे टहलने लगे और हम लोग फिर पहले की भांति उन्हीं बूँदों की ओर फिरे।

साहब भी मेरे साथ चलते चलते धीरे धीरे कहने लगे कि देखो, तुमारे देश में अंगरेजी पढ़नेवालों की प्रायः यही दशा

होती है। बस, ये अंगरेजी पढ़ने का पूरा फल यही समझते हैं कि कोट बूट पटलून पहरना और होटलों में भ्रष्ट पदार्थों का भोजन करना तथा अपने धर्म को छोड़ देना और अपने देश के अच्छे विद्वान् महात्माओं को हँसना। छिः! देखो तो, ऐसों से तुम लोगों का भी जी हट जाता है और हम लोग भी इन को तुच्छ ही समझते हैं।

मैंने कहा नहीं साहब! आप के देशी लोग तो ऐसों ही से तुष्ट रहते हैं। साहब बोले "यह तुमारी भूल है। कुत्ता पोंछ हिलाता मखमल की गद्दी पर लोटे तब भी वह कुत्ता ही है और हाथी धूल में खड़ा झूमता रहे तब भी वह हाथी ही है। हम लोग भी समझते हैं कि किस को कितनी तो विद्या है और कितनी गम्भीरता है कि चट रूप भी बदल दिया और मत तथा सिद्धान्त भी बदल दिया। उन लोगों के पुरखे तो ब्राह्मण भोजन कराते आये और ये बात बात में अंगरेजों को शराब पिलाते हैं। हम लोग चैन से बढ़ के हाथ भी मारते हैं और इनके खुशामदीपन पर-" यों कहते ही कहते साहब की दृष्टि एक चट्टान पर पड़ी जिस पर कुछ लिखा था। बस, बात छोड़ हम दोनों वहाँ पहुँचे और उन्हीं पुराने अक्षरों में वहाँ यह लिखा पाया।

"गङ्गायमुनावाक्कटिनीनाम्, शुभ्रासितशोणं वरवारि।
तीर्थराजधामनि सम्मिलितम्, क्षणतः पातकसंचयहारि"॥

[गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों का (क्रम से) सफेद, काला और लाल सुन्दर जल जो तीर्थराज प्रयाग में मिला है, क्षण भर में पाप समूह को दूर करनेवाला है।]

बस इसे भी साहब ने अपनी नोटबुक में लिख लिया और कहने लगे कि लो अब समझे। पृथ्वी पर तो गङ्गा और यमुना के जल में थोड़ा सा भेद जान पड़ता है पर उसे भी वहां के नवयुवक लोग नहीं मानते, पर यहाँ तो सब बात स्पष्ट है, पत्थर का छना जल और तिस्पर भी यह गहरी चमक, अब क्या कहना।

वहां बड़े आदर और भक्ति से हम लोग नहाये।

बैठते उठते कुछ पच्छिम चले। देखा कि एक वट ऐसा भारी दूर तक फैल रहा है कि एक ही वृक्ष ने जङ्गल कर रक्खा है। कुछ पास आने से विदित हुआ कि वह वृक्ष तो ऊपर है पर उस की जटायें नीचे लटक लटक कर पृथ्वी पर जम गई हैं और उन से नई नई शाखा फूट गई हैं। उसी शाखामण्डल से वहाँ जंगल ऐसा हो गया था। देखते ही मैंने कहा कि "अब किसी से पूछना न होगा। यही अक्षयबट है इस में सन्देह नहीं।" साहब ने मुझ से कहा कि "आप जाके इस वृक्ष को छूइये, देखिये, मैं म्लेच्छ हूँ मैं इस के समीप न जाऊँगा। नहीं तो काशी पर जैसे रोका गया वैसे ही रोका जाऊँगा।"

वे दोनों वहाँ ही शिलातल पर बैठ गये और मैं आगे गया। वट का स्पर्श किया, प्रणाम किया और वट के जड़ में हो के एक छोटी सी जलधारा लहकती थी, उस के जल से मार्जन किया। उस धारा में बहुत से नील कमल खिले थे उन की शोभा देख मैं किनारे टहलने लगा। एक स्थान में देखा कि कमल खिले हैं और मधु से भरे हैं। मेरी दृष्टि ऊपर पड़ी तो देखा कि उसी वृक्ष की डारों में बहुत से मधु के छाते लगे हैं और उन में से जहां तहां मधु चूता है सो खिले कमलों में लदफद हो रहा है। मैंने एक कमल तोड़, अमृत ऐसा मधुर मधुर खाया और वही दिव्य जल पिया। फिर दो कमल उन दोनों के लिये भी तोड़ लिये शोभा देखते धीरे धीरे उन के पास आया। वे दोनों भी उन कमलों को चाट, अति प्रसन्न हुए।

इतनी देर में साहब ने अपनी नोट बुक में क्या जाने क्या क्या लिख मारा।

हम लोग वहां बैठे। मनीमन में मैं विचारने लगा कि ये भूगर्भ के पवित्र स्थान अब तक केवल मुनि ऋषि ही के भाग में थे पर अब यह कलियुग का माहात्म्य है कि यहाँ अंगरेज और ब्राह्मो

भी पहुँचे। अब इस स्थान को अंगरेजों ने देख लिया। अब स्थान स्थान से सुरङ्ग लगा के पथ निकाल लें तो कौन आश्चर्य है। बस ये साहब बहादुर नोट में लिखते ही जाते हैं। ऊपर जा के लोगों से कहेंहीगे और अंगरेज लोग इस भूगर्भ की सम्पत्ति को भी आत्मसात् करेंगे।

अन्तःकरण का वेग भी कैसा प्रबल है! उसी क्षण मेरी आंखों के आगे यह आ गया कि मानों चाणक्य के किले में अंगरेजी पहरे पड़ रहे हैं, काशीधाम का सोना खोद खोद छकड़ों पर लाद लाद टकसालों में भेजा जा रहा है, तार लगे हैं, रेल चलती हैं, सहस्रों मेम टहल रही हैं, उनकी बगलों में हाथ डाल नवयुवक अनुगमन कर रहे हैं। स्थान स्थान में हारमोनियम बज रहे हैं और सोडावाटर ढल रहे हैं। फिर आप ही चिहुँक सा उठा और चारों ओर देख भाल सुटक गया। हृदय ने स्वयम् समझा दिया कि कलियुग है सन्देह नहीं, परन्तु तुम जितनी आशङ्का करते हो उतनी दुर्दशा भारत की नहीं होगी। काशी धाम आदि पवित्र स्थानों में कोई प्रवेश न कर सकेगा। परन्तु अब एक अंगरेज देख चले, अब बहुत लोगों का आना जाना होगा।

यों सोच ही रहा हूँ कि साहब ने कहा, चलिये और टहलें। बस हम लोग उठे और दक्षिण की ओर चले। अब साधारण बात का फैलाव कहाँ तक करैं। बैठना उठना सोना फल खाना सब कुछ होता गया, चलते गये।

वहां से बड़ी दूर तक दक्षिण चले आये। अब न पूछिये। अब एक और ही आश्चर्य के स्थान में पहुँचे। आगे बड़ा प्रकाश देख पड़ने लगा। हम लोगों का जी ललचने लगा, पाँव आप ही खटा-खट उठने लगे, उजाला और अधिक अधिक आँखों को ललचाने लगा, दूध की सी धोई सफेद भूमि देख पड़ने लगी। कुछ आगे चलते ही देखा कि चारों ओर स्फटिक ही स्फटिक है। और उनी

ढोकों में कहीं कोई कोई टुकड़ा आप ही आप ऐसा चमकता था कि उसने उजाला कर रक्खा था।

आगे चले। अब क्या पूछते हैं! चारों ओर स्फटिक ही की चट्टानें मिलने लगी। कहीं कहीं मट्टी भी थी पर वह भी काशीपुर की चीनी ऐसी श्वेत थी। और उस पर जो छोटे छोटे पौधे फूले थे वे मैंने पृथ्वी पर कभी देखे ही नहीं कि मैं उनका नाम कहूं। देखने में विचित्र सुन्दरता और सूंघने से विचित्र गन्ध!

और बढ़े। सिर पर भी स्फटिक की छत। और उस में से उजाले की किरणें बाहर निकली आती थीं। उस पर दृष्टि दे के देखने से विदित होने लगा कि ऊपर कोई नदी बह रही है। वह स्फटिक की शिला कांच सरीखी पारदर्शक थीं, इस कारण ऊपर के कछुए मछलियों की भी कुछ कुछ आभा झलकने लगी और नदी के बहने की गहगह ध्वनि भी कुछ कुछ कान पड़ने लगी।

बस बढ़े। यह जान पड़ने लगा कि सूर्य ऊपर हैं और उनी की किरणें जल और स्फटिक की शिला को बेध कर नीचे आ रही हैं। उस प्रकाश को पा स्फटिक के ढोके और भी अधिक अधिक चमकते थे। कहीं कहीं जल के फुहारे से छूट रहे थे, कहीं स्फटिक के ढोकों को लपेटे लताएँ डहडहा रही थीं, और कहीं कहीं छोटे छोटे अग्निवृक्ष टिमटिमा रहे थे। हम लोगों को उस मणिमय स्थान को देख बड़ा आश्चर्य हुआ। सुगन्ध लेते, शोभा देखते, हम लोग टहलने लगे। पर पांव बहुत थक गये थे। बैठने की इच्छा हुई। स्फटिक की चिकनी शिलाओं की कमी न थी। हम लोग बैठे। सामने देखा कि एक लता की झमाट में से गुलाब के फूल ऐसी गुलाबी चिड़िया बोलती हुई निकली; चोंच हिला, गर्दन घुमा, इधर उधर देख, फुदक फुदक, पांखें फरफरा, पाँखों की जड़ों को चोंच से खुजला, आगे झुक, चोंच उठा, पोंछ हिला, कुहुक मारती उठी कि हम सबों की आँखें भी उसी के साथ नाच उठीं। वह चिड़िया गिरह खाती, घेरा लेती, कभी

पृथ्वी की ओर चूती और कभी पांखें फटकार ऊपर उचकती, चट-पट दक्खिन से उत्तर की ओर चली गई और हम लोगों की आंखें भी अपने साथ ही ले गई। हम लोगों ने देखा कि एक हरा सा पेड़ है और उस की सपेद २ डालियां हैं। उसी की दो तीन परिक्रमा कर यह चिड़िया भी उसी की एक डाल पर बैठ गई। हम लोग जब तक उस चिड़िया के विषय में कुछ बात चीत करना चाहे तब तक तो इसने पोंछ और सिर के झोंके से फुनगी को झुका २ अति स्पष्ट स्वरसे "सीताराम सीताराम" इस नाम का गीत गाया। इस मधुर कूजित को सुनते ही हम तीनों उसी ओर चल पड़े, पर साहब ने कहा कि "बस बस, आगे चलने से क्या जाने वह उड़ जाय, यहाँ ही ठहर के सुनें। और क्या बोलती है"। तब वह चिड़िया पांखें फरफरा अपनी चोंच को दो तीन बेर पंजे में रगड़ फिर बोली कि "लक्ष्मण, लक्ष्मण सीता सीता सीता राम सीता-राम—चित्रकूट चित्रकूट मन्दाकिनी" मैंने कुछ कहना चाहा पर साहब ने मेरा हाथ पकड़ के दबा दिया मैं तो चुप रहा पर वह बङ्गाली बाबू चिड़िया की ओर देख वेलडन वेलडन [बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!] कर ताली बजा हंस पड़ा। उस चिड़िया ने न ऐसा रूप ही कभी देखा होगा और न ताली के साथ ऐसी खिल-खिलाहट ही सुनी होगी।

बस कहना क्या है। चट चिड़िया चम्पत हुई और हम तीनों उसी पेड़ की ओर टकटकी लगाये, मुंह बाये खड़े रह गये।

थोड़ी देर उस बङ्गाली के झाड़ने झटकने में लगी। फिर मैंने कहा कि साहब! इस चिड़िया की बोलचाल से तो यह चित्र-कूट सा स्थान जान पड़ता है। साहब ने अपना भी ऐसा ही अनुभव बतलाया। हम लोग बातें करते उसी पेड़ के समीप आये। अब और आश्चर्य की बातें सुनिये। उस पेड़ की डालों में बराबर "राम राम राम राम" लिखा था। साहब ने कहा—देखिये, इस स्थान का माहात्म्य। यहां सब कुछ राममय है।

मेरी आँखों से तो आसुओं की धारा लग गई। साहब ने चक्कू निकाल एक डाल पर से थोड़ा सा छिलका छोल लिया पर देखा कि भीतर भी उन अक्षरों के चिह्न ज्यों के त्यों देख पड़े। साहब ने कहा, देखिये। रामावतार का माहात्म्य ! अब जो इस के विरोधी हों उने पता बतला उसी बराबर के पहाड़ के बिल में ढकेल देना चाहिये कि टुघरते टुघरते इधर आ पड़ें तो देखें तो। अब क्या पूछते हैं। हम लोग शोभा देखते दक्षिण को ओर चले। धीरे धीरे लाल, पीली, हरी, बहुरङ्गी चिड़ियाएं देख पड़ने लगीं। वे सब अपने अपने मीठे मीठे कण्ठों से रामनाम का गान कर रही थीं। अवकाश लम्बा चौड़ा। स्फटिक की प्रभा अकथनीय थी। तिसपर भी ऊपर की चट्टान भेद के जो प्रकाश आता था, उस में इन्द्रधनु के से रङ्ग की विचित्र आभा थी। फिर कहीं अग्निवृक्ष, कहीं जुगनू से सौगुनी चमकती हुई तितलियां मिलजुल के इन प्रकाशों ने जो आनन्द की वृष्टि कर रक्खी थी उस का वर्णन करना किसका सामर्थ्य है। तिस पर भी चिड़ियों की चकचकाहट की तो कोई बात ही न पूछिये। सारा अवकाश "कोशलेश किशोर, जानकी नाथ लक्ष्मणाग्रज राघव, जानकी वल्लभ, राम राम राम" इन अमृत से कोटि गुण मीठे शब्दों के अमृत से बढ़ कर मधुर उच्चारण के जाल से भर गया। स्थान स्थान में लता थीं और स्थान स्थान में वृक्ष थे, पर सबों पर ये पक्षी बैठे थे और अनुष्ठानी ब्राह्मणों की भांति तथा संस्कृत के विद्यार्थियों की भांति इनी नाम मन्त्र को रट रहे थे।

मेरी आंखों के भी मानों आगे ही रामचन्द्र की वह मूर्ति आ गई, जिस पर जटा का मुकुट है, मृगचर्म लिपटी है, धनुबाण हाथ में है, श्याम अङ्ग में पीत वस्त्र मेघ में विद्युत् की शोभा को जमाये हैं, आगे आप हैं, पीछे जनकतनया और उस के पीछे कर्पूरगौर कुमार लक्ष्मण हैं। साहब ने पुलकाश्रु से भींगे मेरे मुख

को देख कहा कि तुम लोग धन्य हो और तुमारा मत धन्य है कि यह आनन्द उठाते हो। दूसरे दूसरों के मतों में इतनी सामग्री ही नहीं है कि इस चढ़ी बढ़ी भक्ति का लेश भी पा सकें।

आगे बढ़े तो देखा कि कहीं कहीं स्फटिक के फुहारें भी निर्मल जल का झाड़ बना रहे हैं। जान पड़ा कि ऊपर से किसी सोते में हो के कसा हुआ जल आता है और फुहारों में हो के निकलता है।

चलते चलते एक ठिकाने देखा कि एक कुशासन बिछा है, जल का भरा तुम्बा धरा है, पर वहाँ मनुष्य कोई नहीं। मैंने कहा, देखिये अभी यहाँ से कोई मुनि उठ गये हैं। साहब ने कहा "प्रधानतः हम म्लेच्छ को देख कर"। आगे चले। कहीं लंगोटी सूखती देख पड़ी, कहीं, कहीं यव तिल कुश रक्खे थे, और कहीं उसी क्षण स्नान करके चले किसी पुरुष के से भींगे पांव के छापे और निचुड़ते पानी की बूंदों की पङ्क्ति देख पड़ी।

हम लोगों को निश्चय हो गया कि यह ऋषिमण्डल के रहने का स्थान है। यद्यपि हम लोग बैठते उठते, सुस्ताते आये थे तो भी पांव इतने थके थे कि फिर बैठने ही का जी करने लगा। किसी काम की शीघ्रता न थी। हम लोगों की यात्रा का भी कोई अन्त समीप नहीं देख पड़ता था।

बस, स्फटिक की चट्टानें बिछी ही थीं, उन के अगल बगल से छोटे २ पौधे खिल ही रहे थे, शीतल मन्द सुगन्ध बयार बहती ही थी, भांति भांति की चिड़ियाँ अलाप ही रही थीं। बस, एक शिला पर मैं बैठ ही तो गया और साहब से कहा कि अब आप भले ही इधर उधर टहलिये और मुझे सुस्ताने दीजिये।

बस, बाहु पर सिर रख, मैं तो टांग फैला पड़ गया और पड़े ही पड़े, कभी राम नाम वाले वृक्षों पर, कभी रङ्ग बिरङ्गी चिड़ियाओं पर और कभी स्फटिक के ढोंकों पर आखें फेरता था। तब

तक स्मरण हुआ कि ठीक है, चित्रकूट में स्फटिक का अधिक होना तो गोसाईं जी की रामायण ही से सिद्ध है। जयन्त के प्रकरण में स्पष्ट ही लिखा है कि "बैठे फटिक सिला पर सुन्दर"। मैं यों ही बहुत से विचार में पड़ा था कि चोर की भांति नींद आंखों पर चढ ही तो बैठी।

हाय रे नींद ! कहाँ तो मैं उस चित्रकूट की कन्दरा में था कि कहां चटपट क्षण भर के भीतर गया में करसल्ली पर अपने पण्डे मेहरवार की बैठक में पहुँच गया। ओः ! अब क्या कहना है ! वह इसराज धमधमा रही है, ईमन कल्याण छिड़ रही है, मियां बांकरल्ली तान भी छोड़ते जाते हैं, एक दूसरे गयावाल भी बैठे हैं और तन्मय हो बांयां घुटका रहे हैं, हुक्के भरे जाते हैं, नहचे फैलाये जाते हैं, फ़ूफ़ू धूआं उड़ रही है, धीरे धीरे गुड़ गुड़ शब्द हो रहा है, हाथाहाथी चिलमें चल रही हैं और पान अतर भी घुमाया जा रहा है। चारों ओर बुलबुल, बया, अगिन लवा के पिंजरे लटक रहे हैं और चुह चुह चुह चुहचुहाना सुना जाता है।

देखते ही देखते हमारे पूज्य गयावाल को जटा निकल आई। मैं जब तक उनकी ओर देख, घर की ओर देखूं तब तक वह भी वही बराबर ५। टीला जान पड़ने लगा, जहाँ मैंने अभय दान पाया था। चारों ओर कुछ नहीं, केवल वृक्ष देख पड़ने लगे, वे इसराज और गाने की गमकें केवल बन के सन्नाटे और भिल्ली के झणत्कार, भौरों के गुञ्जार और झरना के झर झर झर धार की ध्वनिस्वरूप हो गईं। मैंने देखा कि ये वही बाबाजी हैं। चट प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़ा हुआ और कहने लगा कि "करुणा-निधान, मानिये कि मैं बड़े उत्तमोत्तम मणिमय स्थान देखता फिरता हूँ और सुधासार ऐसी जलधार से प्यास मिटाता हूं। पर क्या यदि मैं एक फूटे और अधउजड़े झोंपड़े में भी, अपने बच्चे को गोदी में लेकर बैठूं और सामने बैठी, फटकती स्त्री से भी बात-

चीत करता जाऊं, तो क्या उस आनन्द की कला मात्र के बराबर भी यह रस रस झम झम का आनन्द हो सक्ता है? दीनबन्धो ! अब मुझे उस रोती हुई बूढ़ी मा से मिलाइये और उस दुःखिनी स्त्री को जिलाइये।

मैं कही रहा हूँ, बाबाजी को देख ही रहा हूँ कि बाबाजी का मुंह मेरी स्त्री का सा हो गया और घाघरा औ ओढनी सब छटक गई। अब बाबाजी कहाँ, वही स्त्री सामने बैठी है, पूरा मुंह उघाड़ा भी नहीं है, त्योरी चढ़ी है, आंखों में कुछ ललाई है, सांस लम्बे हैं, आंख के कोनों में कुछ कुछ पानी की बूंदें आ रही हैं।

एक गोड़ उठाये, उसी पर बांयें हाँथ की कुहनी रख हथेली पर बांया गाल रखे हैं। मैं जिसी ओर सामने आके खड़ा होता हूँ, उसी ओर से कुछ आंखें फेर लेती है। आंखों से मोती ऐसे आंसू ढलकते जाते हैं, दहिने हाथ में आँचर का कोना लिये थोड़ी थोड़ी देर में पोंछती जाती है। मैं सामने बैठा जब तक कुछ पूछना चाहता हूँ, तब तक तो लगी फूट फूट के रोने, मैं भी अपने रुमाल से उस के आँसू पोंछता इतने ऊँचे सुर से रो उठा कि कान में यह ध्वनि पड़ने लगी कि अजी क्या बरांते हो, बाबू ! बाबू ! चेत करो। बस, मैं हां हूँ करता उठ बैठा।

उस समय मेरा सांस वेग से चल रहा था, अंग पसीने से भरा था, छाती धड़धड़ाती थी, मुंह भर भरभराया था, शोक लहलहाया था, अभिलाषा तरङ्गित थी, उत्कण्ठा उछलती थी, अधीरता की आंधी चलती थी, आशा की नदी बहती थी, घबराहट की वर्षा होती थी और विरह की ज्वाला लपलपाती थी।

साहब साथ ही मुझ से सपने का हाल पूछने लगे पर मैं कुछ आंय बांय कर उठ खड़ा हुआ और कहा कि बहुत देर से यहाँ जमे हैं। आगे चलिये। अकस्मात् मेरी दृष्टि बंगाली बाबू पर पड़ी। देखा कि वे भी एक चट्टान पर पीठ लगाये दोनों हाथों से घुटनों को पकड़ गरदन झुकाये बैठे हैं। आखें नासाग्र की ओर

टकटकी बांधे हैं, दोनों मोंछ और डाढ़ी के अग्र भाग से आँसू टपटपा रहे हैं, मुँह पर कुछ पिलाई सी आ रही है, और रुक रुक के गरम साँस चल रहे हैं।

हम दोनों चट उनके पास चले गये और कहा कि बाबू ! आप किस सोच में पड़े हैं, आप की आँखों में आँसू क्यों आ रहे हैं। यह क्यों ? हम लोगों के जीते आप को कोई कष्ट न होगा। उठिये ! चलिये, और आगे चलें।

यह सुनते ही तो वह मानुष और भी रो उठा और आँसू पोंछता हुवा हुडुक २ कर कहने लगा "आमार सर्वनाश होलो रे, आँमी की कोरबो, कोथा जाबो" [मेरा सर्वनाश हो गया रे ! मैं क्या करूँगा, कहाँ जाऊँगा ?] हम लोगों ने दुःख का कारण पूछा तो उसने फिर उसी अपनी सड़ी बूसी बोली में जो कुछ रोना रोआ, उसका तात्पर्य यह था कि "बाप रे ! मैं कहाँ आ पड़ा, मैं अपनी स्त्री से केवल दो सप्ताह की छुट्टी ले के इधर आया था। सो अभाग्य से इस ऐसी विचित्र कन्दरा में आ पड़ा हूँ कि यहाँ से चिट्ठी भेजना भी कठिन है। मेरी स्त्री डाक्तरनी है, मेरे बिना समय पर रसोई बना के खिलानेवाला भी उसे कोई नहीं है। मेरी विधवा लड़की का डिप्टी बाबू के लड़के से इसी महीने में ब्याह होने वाला है। मैं क्या करूँ, कैसे ऊपर निकलूँ ? बाप रे बाप ! मरा रे मरा !" इतना कह वह रोता हुआ साहब के पैरों पर गिर पड़ा और हवस हवस के अपने ढङ्ग से कहने लगा, "साहब ! आप लोगों की शक्ति का पार नहीं, आप जो चाहें सो करें, आप बड़ी नदियों को बाँधते हैं, बड़े २ पहाड़ों को तोड़ते हैं और बड़े बड़े जङ्गलों को काटते हैं। जल में आप, स्थल में आप, आकाश में आप, और भूगर्भ में भी आप ही हैं। शीघ्र मुझे किसी बिल के पथ से पृथ्वी पर पहुँचाइये, देर होने से मेरी स्त्री मुझे घर में न घुसने देगी।"

साहब ने उसे उठाया, आँसू पोंछे और कहा कि घबराइये

मत, चलिये, यह चित्रकूट स्थान है। यहाँ ऐसी बहुत कन्दराओं का मिलना सम्भव है जिनसे ऊपर निकास का पथ हो।

उसका यह डौल देख मुझे उसकी बातों पर हँसी भी आती जाती थी, और साथ साथ अपने घर का स्मरण होने से आँखें भी डबडबाती जाती थीं!

हम सब चले। साहब ने मेरी ओर देख प्रगट किया कि सच है, स्त्री पुरुष का स्नेह जो कुछ है सो भारत वर्ष ही में है। जहाँ की स्त्रियाँ पति के साथ जल जाती थीं, जहाँ की महारानियों ने चित्तौरगढ़ में पतिवियोग के कारण राजभवन को श्मशान बना दिया, वहाँ यदि अपनी स्त्रियों के स्मरण से पति पराधीन हो जायँ तो क्या आश्चर्य है! यों बहुत सी बातचीत करते हम लोग टहल चले।

मैं ज्यों अपने साथियों के साथ थोड़ा आगे बढ़ा कि, ऊपर नदी का प्रवाह कम जान पड़ने लगा, पर प्रकाश की कमी न थी। कुछ दक्षिण, कुछ पूर्व की ओर चलना पड़ा, सुगन्ध अधिक अधिक मनोहर आने लगी। हम लोग उसी ओर झुक चले। मन में जो सैकड़ों प्रकार की चिन्ता थीं सो क्या जाने किधर गईं। गन्ध भी क्या विलक्षण पदार्थ है! हम लोगों को देह की सुधि न रही, बस खिंच चले। उसी गन्ध के साथ ठण्ढ वायु का लगना और चिड़ियों का चहकना, सोने में सुगन्ध था। वहाँ इधर उधर से रङ्गविरङ्गी मणियों की झिलमिली जोत झमकती थी। तब तो मन्द मन्द वीणा का शब्द और साथ गाने की भी मधुर धुन सुन पड़ी। ऊपर की ओर दृष्टि पड़ी, देखा कि एक शिला में इस रीति से मणियाँ जड़ी हैं कि 'देवाङ्गना' यह शब्द खचित हो रहा है। इस प्रकार के अक्षर पहले कई बेर देखे जा चुके थे, इस कारण इसका पढ़ना कुछ भी कठिन न था। हम लोगों ने आपस में बातचीत की और सब की इच्छा हुई कि चलें, एक बेर देवाङ्गनाओं का दर्शन करें। पर ज्यों ही हम लोगों ने उधर चलना चाहा कि

देखा, उसी ओर पेड़ों पर मोटे मोटे बन्दर बैठे हैं और हम लोगों को देख, कान चपका, सिर झुका, पोंछ उठा, कमर ऊँची कर, दाँत दिखला रहे हैं।

यह भयानक दृश्य देख, हम लोगों का हियाव न पड़ा कि उस ओर मन से भी चलना चाहैं।

वहाँ से सीधे दक्खिन चले। कुछ दूर चलने के अनन्तर देखा कि एक पत्थर में मणिमय अक्षर खुदे हैं कि "अत्रिस्थानम्" [अत्रि मुनि का स्थान] मैंने कहा, "देखिये, पर अत्रि अनसूया का स्थान जान पड़ता है। मैंने सुना था कि चित्रकूट के समीप अत्रि-स्थान है। वहाँ पहाड़ पर एक बाबाजी योगी रहते हैं"। साहब ने अपनी नोटबुक में यह भी लिख लिया। और आगे चलने पर एक ऐसा स्थान मिला, जहाँ कई पथ थे। एक पर लिखा था "माण्डव्याश्रम मार्गः" [माण्डव्यऋषि के आश्रम रास्ता] दूसरे पर "कालञ्जरगिरिमार्गः" [कालञ्जर पर्वत का रास्ता।] और तीसरे पर "गुप्तगोदावरीमार्गः" [गुप्त गोदावरी का रास्ता।] हम लोगों ने बड़ी देर तक बातचीत करके गुप्तगोदावरी ही की ओर चलना स्थिर किया क्योंकि और पथों में कुछ अंधेरा सा था, पर इधर उजाला अधिक था।

कुछ चढ़ाव मिलने लगा। बंगाली बाबू बोले "एखुन हय तो आमरा बाहिर हबो"। [अब शायद हम लोग बाहर निकल सकेंगे।] पर हम लोगों ने उस मार्ग का बाहर तक आने का कोई निश्चय न समझा। वही बात हुई, फिर बराबर की भूमि मिली, तब तक देखा कि दहने हाथ की ओर एक दो हाथ चौड़ा जल का प्रवाह दौड़ा जा रहा है। उसी प्रवाह के किनारे हम लोग पच्छिम दक्खिन के कोने पर चले। यह एक ही रंग का लम्बा पथ चलना पड़ा, तब देखा कि वह प्रवाह पतला पड़ता जाता है। हम लोगों ने निश्चय किया कि यही गुप्त गोदावरी है। सब ने जल पिया, मुंह धोआ। वहाँ विचित्र सपेद सपेद पत्थर थे और

अति चमकदार पीली मट्टी थी। उस मट्टी का मैंने टीका लगाया। देखिये, अभी तक कुछ कुछ ललाट में लगा होगा। और साहब की बात न पूछिये। वे तो सारे मार्ग में यही कर्म करते आते थे कि जो जो नये प्रकार के पत्थर कङ्कर मिलें, उठा, जेब में रखना और उनके विषय में कुछ नोट बुक में लिखना।

और आगे चल के देखा कि ऊपर एक पत्थर के कोने में दो छेद हैं, उनमें एक में से गरम और एक में से ठण्ढे पानी की, कनिष्ठिका अङ्गुली ऐसी मोटी धार गिर रही है। और इनी दोनों धारों ने मिल कर छोटा सा प्रवाह बहाया है जो चौड़ा होता होता दो हाथ का हो गया था। हम लोगों ने ध्यान देके देखा तो विदित हुआ कि नीचे से भी कहीं कहीं से पानी उबलता है और वही प्रवाह बढ़ाने का कारण है।

वहां से बांये हाथ को पथ फिरा था, उसी मोड़ पर "विराध-कुण्डमार्गः" [विराध कुण्ड का रास्ता] लिखा था। साहब ने कहा "डेको, इण्डिया में लिकना किटना पुराना हाइ"। मैंने कहा "साहब ! यहाँ पृथ्वी के भीतर आके कौन लिख गया होगा ?" साहब ने कहा "पहले यहाँ बहुट लोग आटा ठा, टुम लोग डरटा है"

अब इस पथ में उजाला कम था। पर हम लोग जिन बड़े बड़े अन्धकार के स्थानों के पार हो आये थे, उन के आगे यह कुछ भी भयानक न था, इस कारण बेधड़क घुस चले। डरपोक महाशय कुछ कुछ हिचकिचाये पर हम लोग धकेल-धकाल आगे ले चले।

बीच में दूर तक की कोई कहने सुनने योग्य नई बात न थी। यह आप लोग समझ ही सकते हैं कि चित्रकूटवाली रमक झमक धीरे धीरे बहुत ही कम हो गई थी। हाँ, चमकती तितलियाँ और कहीं कहीं अग्निवृत्त और कहीं कहीं दूर तक ऊपर खुले हुए बिल ऐसे थे, जिन के द्वारा प्रकाश आता था। हम लोग कुछ कुछ बातचीत करते चले जाते थे। साहब ने

अपनी टेढी मेढी भाषा में कहा कि देखिये ! आप लोग भूगर्भ में आने से इतना सुख होने पर भी यों डरते हैं और कब निकलैं कब निकलैं करते हैं, पर किसी समय भूगर्भ में महिरावण नामक राजा की राजधानी थी और लङ्केश से मित्रता के कारण वह राम लक्ष्मण को पकड़ लाया था, फिर हनूमान् रूपान्तर कर उसकी राजधानी में गये और अपने बाहुबल से उसे मार, राम लक्ष्मण को छुड़ा लाये। भारत में पहले दैत्य दानव एक बड़े ही धूर्त्त वर्ग थे। वे लोग इनी भूगर्भों में छिपे रहते थे, और जब अवसर पाते थे तभी पृथ्वी के ऊपर अपना अधिकार जमा लेते थे और जब उन पर आपत्ति आती थी तो फिर भाग के इनी भूगर्भों में घुस जाते थे। यदि पुराण और इतिहासों की कहानियां देखिये अथवा सहस्ररजनी कथासरित्सागर आदि की आख्यायिका देखिये तो कितने ही प्रकरण ऐसे मिलेंगे, जिनसे जाना जाय कि पहले भूगर्भों में आप के देश-वासी लोग प्रायः विचरते थे; पर कैसे आश्चर्य की बात है कि आप भारतवर्षीय लोग इस दुर्दशा के समय में भी लम्बी तान, सोते हैं तानातानी में दिन बिताते हैं और अंगरेज लोग भारत के भूगर्भ को भी छाने डालते हैं। आप के देश में अभी तक पहाड़ों में सोने और जवाहिरों की खानें भरी हैं पर जिन राजाओं के राज में ऐसे पहाड़ पड़े हैं, वे उन पहाड़ों से दो खरहे वा दो हरन छोड़ और कोई लाभ नहीं उठाते, पर हमारे देशी लोग जानते हैं कि किन किन चिह्नों से सोने आदि की पहाड़ियां पहचानी जाती हैं और वे उनी चिह्नों को देख आप ही के राजा से, ठीका से सोना निकालते हैं।

यों हम लोग भांति भांति की बातें करते आगे बढ़े जाते थे कि, सपेद पत्थर की भूमि मिलने लगी और अवकाश बड़ा होने लगा। थोड़ी दूर आगे आते ही स्थान बहुत चौड़ा मिला और वहां बड़ा उजाला देख पड़ा। पास आने से विदित हुआ कि एक बड़ा चक्कर ऊपर से खुला है, सूर्य का प्रकाश नीचे फैला था, और

जहाँ ऊपर से खुला था उसी की सुध में नीचे भी एक बड़ा भारी कुवां सा चक्कर गहरा चला गया था। किनारे से झुक के देखने में, उस का अन्त नहीं जात पड़ता था।

मैंने कहा "बस यही विराधकूप है। यहां ही रामचन्द्र ने विराध दानव को गाड़ा है"। साहब ने कहा, और ये सपेद पत्थर उसी को हड्डी जान पड़ती है।

हम लोगों ने देखा कि एक किनारे बहुत भारी बड़ का पेड़ लगा है और वह ऐसा टेढा है कि आधा कुवां छेंक रखा है।

हम लोग वहां टहल के देख रहे हैं कि ऊपर के कुछ, कुछ दूर के से अस्पष्ट शब्दों की गूंज आने लगी। हम लोगों की दृष्टि ऊपर पड़ी। दूर गुब्वारे ऐसा प्रकाशमय पदार्थ उतरता देख पड़ा।

अब तो चकित हो हम तीनों देखने लगे और बिचार करने लगे कि यह क्या है। यह प्रकाश समीप आ चला और मुझे बाबा-जी की बात का स्मरण हुआ। मैंने कहा "साहब ! जान पड़ता है कि किसी ने ऊपर से कोई लङ्गड़ लटकाया है।" सुनते ही साहब डाढी पर हाथ रख, आधी मिनट सोच, चिहुँक उठे और बोले कि "ओः ओः ! ठीक बोलटा, फस्ट एप्रिल को प्रोफेसर लूफ लिरपा (Loof lirpa) इस कूएँ को नापने को ठा। आज ओई डीन मालूम होटा।"

मैंने कहा "साहब, यह ऊपर जाने का अच्छा अवसर है। बस, लंघड़ आने दीजिये और उसे पकड़ कर हम लोग लटक जायं तो जब वे लोग लंघड़ ऊपर खींचेंगे तो हम लोग निकल चलैंगे।" बङ्गाली बाबू तो चिल्ला के बोले "नारे बाबू ! पड़लेई प्रान जाबे।" [नहीं बाबू ! गिरते ही प्राण जायँगे।] साहब ने कुछ सोच विचार के साथ चश्मा लगा के बड़ी देर तक ऊपर देखा। तब तक तो लंघड़ और उसकी लालटेम स्पष्ट देख पड़ने लग गई थी और लंघड़ चला आता था। साहब ने प्रगट किया कि लङ्गड़ में तीनों आदमी के साथ लटकने से बोझा बहुत बढ़ जायगा,

कहीं टूट गया तो हम लोगों के शरीर के टुकड़े २ छितरा जायंगे। इसलिये हम लोगों में से कोई एक पुरुष इसमें लटक जाय तो बिना परिश्रम ऊपर जा सक्ता है, और वही ऊपर के लोगों से बातचीत कर, फेर लंगर लटकवावे तो क्रम से सब निकल सकते हैं।

मैंने कहा कि अच्छा, तो अब लंगर समीप आया, कहिये ? आप पहले जायेंगे ? तब तक बंगाली बाबू बोल उठे कि "ना ना ! उनी आमा के ना नियें जावेन्ना, तुमी निये जाओ" [नहीं नहीं ! वे मुझे बिना लिये नहीं जायँगे, तुम खुद जाओ।] मैंने साहब की ओर देख कर कहा कि अच्छा, तो क्या हुआ, मैं ही आगे जाऊँ ! साहब ने कहा "कुछ चिन्टा नई, तुम आगे जायगा और अम लोगों का इन्टजाम करेगा।"

तब तक तो वह लंघड़ समीप आ गया और उस बट वृक्ष की मोटी डालों के ऊपर टिक गया। मैं उसी क्षण दुपट्टे से कटि कस, लटकते हुए अंगे के पल्लों को खोंस, उसी डार २ समीप आ, लंगर में लिपट, दोनों हाथों से लंगड़ के कड़े को पकड़ बैठ गया और इष्टदेव का स्मरण कर, बाबाजी का स्मरण करने लगा।

थोड़ी ही देर अनन्तर तो वह लंगर उठा और सन्नाटे से ऊपर की ओर चला। मार्ग में कभी डरता, कभी भूलता कभी इधर उधर संधों में से लटकते हुए लत्ते पत्तों को देखता, ऊपर चला आया और आप लोगों से मिला। अब इस के आगे तो कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं। हाँ, इतना कहता हूँ कि वे दोनों भी, इसी गढ़े में नीचे खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं, सो उन्हें भी निकालिये।

यह सुन सब कोई चकपका उठे और प्रोफेसर साहब ने चट उस लंगड़ को खोल लिया और उसके ठिकाने काठ की चौकी का झलुआ बना, आप चढ़ बैठे और लोगों से ढीलने को कहा। बात की बात में उनका झलुआ नीचे उतर गया और वैसे ही अटक